कालिदास के नाटक

Drama



राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली.

सुगम अमर साहित्य

कालिदास के नाटक

کالیداس کے ناٹک

लेखक

जगदीश दीक्षित 'आनन्द'



राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट,
दिल्ली–६

प्रथम संस्करण
दिसम्बर १९५४

मूल्य
एक रुपया चार आना

मुद्रक—न्यू इण्डिया प्रेस, कनाट सरकस, नई दिल्ली।

कालिदास और उनके नाटक—

महाकवि कालिदास की गणना उन कवियों में की जाती है, जो किसी देश-जाति के नहीं, अपितु विश्व की निधि माने जाते हैं। अंग्रेजी-साहित्य में जो स्थान शेक्सपीयर का है, संस्कृत साहित्य में वही स्थान महाकवि कालिदास का है। महाकवि कालिदास काव्य और नाट्य, दोनों कलाओं में सिद्धहस्त थे। उनके तीन नाटक, अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय और मालविकाग्निमित्र, संस्कृत-साहित्य के नाट्यकारों का आजतक पथ-प्रदर्शन करते रहे हैं। इन नाटकों में संस्कृत-साहित्य के नाट्य-नियमों का पूर्णतः पालन किया गया है और इनमें कालिदास की लेखनी की यह विशेषता है कि उसने तूलिका बनकर कल्पना को चित्रवत् चित्रित किया है।

खेद है कि संस्कृत-साहित्य के इस मूर्धन्य कवि के जीवन और जन्म-स्थान के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कवि का प्रकृति-परिचय और भारत का भौगोलिक ज्ञान इतना विस्तृत है कि उसकी रचना से मनोवैज्ञानिक तथ्य के आधार पर उसके जन्म स्थान का निर्णय करना असम्भव है। कालिदास को भारत के पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक की धूलि के कण-कण से प्रेम था और दूर देश के कोने-कोने में बसने वालों के साथ, देश की प्रकृति के साथ उसकी प्रगाढ़ आत्मीयता थी। अतः वह नगर या ग्राम का कवि न होकर भारत का कवि था, उसका जन्म स्थान विशाल भारत था।

कालिदास की कवि-प्रतिभा इतनी चमत्कृत थी कि वे आगे आने वाले कवियों के लिए आदर्श बन गए। इन कवियों ने अपना नाम कालिदास रखकर बड़प्पन का अनुभव किया। ऐसे कवियों की कितनी ही कृतियां संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध होती हैं और पाठक को वास्तविक कालिदास की कृति के विषय में भ्रमित कर देती हैं। परन्तु पारखी लोग कालिदास की रचना को उसकी शैली से उसीप्रकार पहचान लेते हैं जैसे कि सभ्य लोग गेंदे के फूलों में गुलाब के फूलों को।

आज हमारे देश का बहुत बड़ा भाग संस्कृत-साहित्य के सौन्दर्य की ओर पीठ किए बैठा है। कालिदास के प्रस्तुत तीन नाटकों को सरल, संक्षिप्त और गद्यमयी भाषा में उपस्थित करने से मेरा यही अभिप्राय है कि ऐसे लोगों को कालिदास की कला का कुछ परिचय मिले। इसी ध्येय में सफल होने पर मैं अपने परिश्रम को कृतार्थ समझूंगा।

—लेखक

विषय-सूचा



अभिज्ञान शाकुन्तल

: १ :

महाराज दुष्यन्त ने कान तक धनुष खींचा हुआ था। वे निशाना बांधे हुए हरिण के पीछे अपना रथ दौड़ाते जा रहे थे। सामने हरिण था। शिकारी राजा को अपना पीछा करते देख उसे अपनी मृत्यु समीप दीखती थी! वह भय से व्याकुल हो प्राणरक्षा के लिए अपनी पूरी सामर्थ्य से भाग रहा था। अभी-अभी, कुछ समय पूर्व वह निश्चिन्त होकर दूब खा रहा था। काल के समान राजा को देखते ही वह अपना भोजन छोड़ भाग खड़ा हुआ। मुंह में उसके अभी तक घास की पत्तियाँ थीं जो कि भागने और हाँफने के कारण मार्ग पर जहाँ-तहाँ बिखर रही थीं। राजा के धनुष से बाण छूट रहा है या नहीं, यह देखने को उसने अपनी गर्दन मोड़ रखी थी और वह पीछे की ओर देख रहा था। साथ ही बाण लगने के भय से उसका पिछला भाग अगले भाग में घुसा-सा जा रहा था।

वह बार-बार राजा के प्रहार से अपनी रक्षा करने के लिए पृथ्वी से उछल रहा था।

अचानक एक ओर से कुछ तपस्वी बालक आकर राजा के मार्ग में खड़े होगए। हाथ उठाकर एक ने कहा——राजन्! आप यह क्या कर रहे हैं? यह कण्वमुनि का आश्रम है। यह मृग आश्रमवासी है। इसे मारना अनर्थ है! राजा कभी तपस्वियों के पालतू पशुओं का शिकार नहीं करते।

राजा ने धनुष पर चढ़ा बाण उतार लिया। रथ से उतरकर उन्होंने तपस्वी बालकों का स्वागत किया! तब एक बालक ने कहा——राजन्! आप हमारे आश्रम में पधारे हैं। आइए, हमारा आतिथ्य स्वीकार कीजिए।

इस पर राजा ने प्रश्न किया—तो क्या महामुनि कण्व इस समय आश्रम में ही हैं?

ऋषिपुत्र ने उत्तर दिया——नहीं, वे तीर्थयात्रा को गए हैं। हाँ, उनकी पुत्री शकुन्तला इस समय आश्रम में है। अतिथि सत्कार का कार्य-भार उसी पर है।

राजा ने विचार किया, चला जाए। महामुनि नहीं हैं तो क्या हुआ? शकुन्तला तो है। वही मेरे आने की सूचना महामुनि कण्व को दे देगी। महाराज

दुष्यन्त ने उन सब मुनि-बालकों को अपने-अपने कार्य से जाने को कहा और स्वयं आश्रम की ओर चल दिए। वे अभी कुछ ही दूर गए थे कि उन्हें समीप ही कई कन्याओं का सम्मिलित हास्य सुनाई दिया। राजा ने देखा, तपस्वी कन्याएं हाथों में जल-कलश लेकर पौधों को सींच रही थीं। तीन एक ओर खड़ी पौधों को जल दे रही थीं और बातें भी कर रही थीं। उन तीनों में एक शकुन्तला थी और दो उसकी सखियाँ। वार्तालाप सुनने से पता चला कि दोनों सखियों में से एक का नाम प्रियंवदा और दूसरी का नाम अनसूया था। शकुन्तला का सौन्दर्य अनुपम था। उसके स्वर्गीय सौन्दर्य से राजा मुग्धवत् उसी की ओर देखते रहे। कहाँ तपस्वी जीवन और कहाँ यह अनुपम, अनिर्वचनीय सौन्दर्य! राजा को आभास हुआ मानो कोई सुन्दर कमलिनी का फूल सरोवर के शैवाल से घिरा हो। वे अभी यह सब विचार ही रहे थे कि उन्होंने एक अद्भुत घटना देखी। शकुन्तला के कमल-मुख पर एक भौंरा बार-बार मंडरा रहा था। शकुन्तला उस भौंरे को हटाते-हटाते तंग आगई, पर वह जिद्दी भौंरा न माना। इस पर शकुन्तला की सखियाँ खिलखिलाकर हँस रही थीं। शकुन्तला चिल्लाकर कह रही थी, अरे

कोई बचाओ, यह जिद्दी भौंरा मुझे परेशान किए दे रहा है।

किसी ने भौंरे को हटाने का प्रयत्न नहीं किया। एक बोली—इस वन का स्वामी राजा दुष्यन्त है। वन-वासियों की रक्षा करना उसका कर्तव्य है। उसे क्यों नहीं पुकारती! वही तेरी व्यथा हरेगा!

राजा ने यह समय बहुत उपयुक्त पाया। तत्काल वे लताओं को, झाड़ियों को चीरते हुए शकुन्तला के पास आगए। आते ही बोले—कौन दुष्ट मेरे रहते तपस्वी बालाओं से अठखेलियाँ करता है?

इतना कहकर राजा ने भौंरे को हाथ मार कर एक ओर कर दिया। अचानक राजा को इस प्रकार सामने देखकर सबकी सब लजा गईं। एक ने साहस करके उत्तर दिया—महाराज! हमारी सखी को यह भौंरा सता रहा था, पर अब आपकी कृपा से उसे कोई कष्ट नहीं है।

तत्पश्चात् अनसूया ने राजा से आतिथ्य स्वीकार करने की प्रार्थना की। पर राजा ने उसे स्वीकार न किया और पास की शिला पर बैठ गए। कुछ समय शान्ति से बैठने के बाद प्रियंवदा ने राजा का परिचय पूछा। अपना सत्य परिचय राजा देना नहीं चाहते थे,

अतः बोले--मैं महाराज दुष्यन्त का सेवक हूँ। तपस्वियों के किसी कार्य में विघ्न न पड़े इसलिए मेरी वन में नियुक्ति हुई है।

अब राजा ने उत्सुक होकर पूछा--यह शकुन्तला किस प्रकार महामुनि कण्व की पुत्री हुई? महामुनि के तो कोई पुत्री थी नहीं?

इस पर अनसूया ने शकुन्तला के मेनका के गर्भ से जन्म की कथा कह सुनाई।

राजा यह सब सोच ही रहे थे कि उनकी गंभीर मधुर वाणी, देवताओं-सा मनहर सौन्दर्य और उनके तेज से प्रभावित हो शकुन्तला उनकी ओर आकर्षित होती जा रही थी। अपने मन को शान्ति देने के विचार से वह वहां से जाना चाहती थी। उसने प्रियंवदा से कहा--सखी! मैं तो जा रही हूँ। अतिथि का स्वागत करके तुम भी आ जाना।

पर प्रियंवदा बोली--पहले इन पौधों को जल तो दे लो। अन्यथा यह ऋण तुम पर बना ही रहेगा।

शकुन्तला इस पर भी राज़ी नहीं हुई! वह उठकर चलने लगी तो प्रियंवदा ने जिद्द की और उसे रोका। तभी दुश्यन्त को कुछ विचार आया। उन्होंने अपने हाथ की अंगूठी उतारी और प्रियंवदा की ओर उसे

बढ़ाते हुए कहा--आप इस अंगूठी से ऋणमुक्त हो जाइए।

अंगूठी पर अंकित नाम पढ़कर प्रियंवदा को अति आश्चर्य हुआ। वह विचार करने लगी कि अंगूठी स्वीकार करे या न करे। इस पर राजा स्वयं बोले--

प्रियंवदे! यह राजा की भेंट है। इसे अवश्य स्वीकार करना चाहिए।

इस पर प्रियंवदा बोली--सखी शकुन्तले! महाराज के अनुग्रह से अब तुम ऋणमुक्त हो गई हो। अब जाना चाहो तो जा सकती हो।

मोहवश शकुन्तला जाना नहीं चाहती थी। चाहती थी कि क्षणभर और महाराज के दर्शन करती रहे। पर प्रियंवदा ने जाने की स्वीकृति दे दी थी। वह विचार ही कर रही थी कि क्या करना चाहिए कि आश्रमवासियों ने भयभीत होकर शोर मचाना शुरू कर दिया। राजा की सेना का एक हाथी आश्रम की ओर निकल आया था और शान्ति-भंग कर रहा था। महाराजा ने उन्हें आश्वासन दिया और उस ओर चलने को प्रस्तुत हो गए। तपस्विनी बालाएं भी चल दीं। चलते समय शकुन्तला अपनी इच्छा का आवेग न रोक सकी और उसने मुड़कर महाराज दुश्यन्त की

ओर देखा। महाराज ने उसकी आँखों में उसके मानसिक भावों को भलीभांति पढ़ लिया और फिर हाथी को रोकने के लिये चल दिए।

: २ :

हाथी को शान्त करके जब महाराज अपने शिविर में वापस पहुँचे, तो वहाँ माढव्य बैठा मिला। माढव्य राजा का मित्र विदूषक था। राजा का मनोरंजन करना उसका कार्य था। उसने बैठे ही बैठे महराज से कहा—मित्र ! मैं तो बाज़ आया ऐसे शिकार से। बाण चलाते-चलाते मेरे हाथ टूट-से गए हैं। मृगों के पीछे भागते-भागते मेरे पैर अचेतन हो चुके हैं। इसलिए न मैं तुम्हें नमस्कार कर सकता हूँ और न ही खड़े होकर तुम्हारा स्वागत !

राजा बोले—क्यों, क्या अरधंग हो गया है ?

माढव्य बोला—तभी तो कहता हूँ कि इस शिकार के झंझट को छोड़ो। कुछ समय विश्राम करो, फिर देखा जाएगा।

महाराज भी यही चाहते थे। स्वस्थ होकर कुछ समय वे शकुन्तला के विषय में सोचना चाहते थे। इसलिए विदूषक की हाँ में हाँ मिलाते हुए बोले—ठीक है मित्र ! तुम्हारा कहा भला मैं कभी टाल

सकता हूँ। लो आज मैंने भी निश्चय कर लिया कि शिकार पर कभी नहीं जाऊँगा।

कुछ समय इधर-उधर की बातें करने के बाद महाराज ने अपनी और शकुन्तला की सारी प्रेम कहानी मित्र को कह सुनाई। सुनते ही विदूषक हँसा। फिर बोला—तुम किस वनवासिनी पर लट्टू हुए हो। मुझे तो ऐसा लगता है, खजूर से हटकर तुम्हारी इच्छा इमली पर जा अटकी है।

महाराज बोले—खूब बातें बना लो मित्र ! पर ये सब बातें तभी तक हैं जब तक तुमने उसे देखा नहीं। उसकी रूप-माधुरी को देखने के बाद तो तुम्हें भी गोल-गोल लड्डू पत्थर से दीखने लगेंगे।

लड्डुओं का नाम सुनना था कि माढव्य की सोई भूख जाग पड़ी। वह उठकर भोजन के लिए चला गया। उसके जाने के बाद ही तपस्वी बालकों ने आकर महाराज से बातें प्रारम्भ कर दीं। जबसे महामुनि कण्व गए थे, राक्षसों के उपद्रव बढ़ गए थे। उनके सामने तो कोई भी राक्षस भय के कारण उपद्रव करता नहीं था। जब तक वे न आएं तब तक आश्रम की शान्ति के लिए उन्होंने महाराज से प्रार्थना की। महाराज ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उन्हें

निर्भय रहने का आश्वासन दिया। तपस्वी बालकों को उन्होंने सादर विदा किया। उसके बाद उनके पास राजधानी से राजमाता का दूत आया और सादर अभिवादन करके बोला––महाराज! राजमाता की आज्ञा है कि आप शीघ्र ही नगर में पधारें। स्वर्गीय महाराज को पिण्डदान देना है।

यह सुनना था कि महाराज दुश्यन्त दुविधा में पड़ गए। उन्होंने अभी कुछ समय तक आश्रम के निकट ही रहकर तपस्वियों की रक्षा का भार लिया था। इधर राजमाता की आज्ञा का पालन तत्काल होना चाहिए था। शकुन्तला के प्रेम में महाराज अभी वापस भी जाना नहीं चाहते थे। राजा दुश्यन्त ने इस विषय पर गम्भीरता से विचार किया और फिर माढव्य को बुलाया। महाराज ने माढव्य से कहा––मित्र! माता तुम्हें भी मेरी भांति पुत्र ही समझती हैं। उनकी आज्ञा है कि नगर वापस चला जाऊँ और महाराज को तर्पण दूँ। पर मैं इस समय दुविधा में हूँ। मैंने अभी-अभी तपस्वी बालकों को वचन दिया है कि मैं कुछ समय इसी वन में रहकर राक्षसों से उनकी रक्षा करूँगा। बड़ा धर्म-संकट है। यदि मेरे स्थान पर तुम ही नगर चले जाओ तो क्या हानि? मेरी परिस्थिति

से राजमाता को सूचित कर देना।

विदूषक ने यह बात स्वीकार कर ली। पर उसी समय महाराज को एक बात स्मरण हो आई। शकुन्तला और अपने प्रेम की कहानी उन्होंने माढव्य को सुना दी थी। उन्हें विश्वास था कि माढव्य अवश्य माताजी से वह सब कह सुनाएगा। इसलिए वह फिर बोले––मित्र! एक बात और ध्यान में रखना। वह जो शकुन्तला के विषय में मैंने प्रेम की बात कही थी, केवल कल्पना मात्र थी। तुम्हारा मनोरंजन करना मात्र उसका ध्येय था। कहीं तुम उसे सत्य समझ लो और सबसे गाते फिरो।

माढव्य ने सब कुछ स्वीकार कर लिया। वह महाराज के स्थान पर स्वयं नगर चला गया।

: ३ :

महाराज दुश्यन्त की भांति ही शकुन्तला भी उन के प्रेम में तल्लीन थी। वृक्ष, लता, पुष्प, पशु, पक्षी, सखी आदि उसे कुछ भी अच्छा न लगता था। रह-रह कर उसे महाराज दुश्यन्त का ध्यान आजाता और फिर एक आग-सी उसके हृदय को जलाने लगती। उसने अपने मन की बात किसी से भी न कही। मन ही मन सन्तप्त होने के कारण वह अस्वस्थ-सी दीखने लगी।

दोपहर का समय हो चला था। यज्ञों का पवित्र सुगन्धित धूम्र क्रमशः आश्रम तथा वन-प्रान्त को सुगन्धित करके आकाश में विलीन हो चुका था। असह्य ताप के कारण पक्षी अपना भ्रमण त्याग कर छाया सुख के लिए वृक्षों पर आ रहे थे। शकुन्तला का मानसिक परिताप इस समय उसे और भी अस्वस्थ बनाने लगा। वह मालती नदी के तट पर जाकर एक शिला पर लेट गई। फूलों से उसने अपने सारे शरीर को ढक लिया। सखियां उसे अस्वस्थ जान उस पर पंखा डुलाने लगीं। मानसिक वेदना से कुम्हलाई-सी वह ऐसी दीखती थी मानो झुलसी हुई कोमल पत्तियों वाली कोई लता वायु के झोंकों से झूम उठी हो। थोड़े ही समय में शकुन्तला ने आँखें भी बन्द कर लीं।

महाराज दुश्यन्त को इस समय भी शकुन्तला का ही ध्यान आ रहा था। वे उसके दर्शन को व्याकुल हो शिविर से निकल पड़े। आश्रम के समीप जाने पर उन्होंने विचार किया कि ऐसी गर्मी में शकुन्तला अवश्य मालती नदी के तट पर होगी। वे उसी ओर चल दिए। कुछ दूर चलने पर उन्हें नए पदचिन्ह दीख पड़े। उन्हीं के संकेत पर वे बढ़ते गए। एक लता-कुञ्ज की ओट में होकर उन्होंने देखा——शकुन्तला

शिला पर पुष्पों से लदी लेटी है। उसकी सखियाँ पास बैठी पंखा कर रही हैं और आपस में बातें भी कर रही हैं।

राजा उनकी बात सुनता रहा। उसने सुना, प्रियंवदा शकुन्तला से पूछ रही थी——सखि! तुम हम से क्यों हृदय की बात छिपा रही हो। तुम्हें क्या दुःख है। यह तो कोई मानसिक व्याधि दीखती है। किस महाभाग के चिन्तन में तुम इस प्रकार तल्लीन हो? किस भाग्यशाली के लिए तुम यह संताप सह रही हो?

शकुन्तला ने पहले तो कोई भी उत्तर नहीं दिया। पर जब उसकी दोनों सखियों ने बार-बार पूछा तो उसने राजा दुश्यन्त के प्रति अपने मन का लगाव कह सुनाया।

लता-कुञ्ज की ओट में खड़े दुश्यन्त ने भी ये वाक्य सुने। प्रसन्नता से उनका मुखकमल खिल उठा। वे मन ही मन बोले——अब कुछ भी सुनना शेष नहीं, जो कुछ मैं सुनना चाहता था, सुन लिया।

शकुन्तला की मन की बात जानकर दोनों सखियाँ विचार करने लगीं। अब किस प्रकार इसे महाराज दुष्यन्त के दर्शन हों, यही एक समस्या थी। तभी प्रियंवदा बोली——सखि! तुमने अपने अनुरूप साथी

चुन लिया है। इसमें किसी प्रकार के आश्चर्य की बात नहीं। महानदी तो स्वभाव से ही समुद्र में जाकर लीन होती है। अब तुम महाराज के नाम एक पत्र लिखकर अपनी व्यथा का वर्णन करो।

शकुन्तला ने केले के पत्ते पर कुछ लिखा, फिर अपनी सखियों को सुनाकर बोली––सखियो ! मैंने लिखा है––राजन् ! मैं नहीं जानती कि आप भी इसका अनुभव करते हैं अथवा नहीं, पर मुझे तो सदा आपका ही ध्यान लगा रहता है। यह आपका ही प्रेम है जो मुझे रात-दिन तप्त करता रहता है।

तभी दुष्यन्त लता-कुञ्जों को हटाकर सामने प्रगट हो गए। फिर बोले––शकुन्तले ! तुमने यह कैसे अनुमान लगा लिया कि प्रेम की यह भावना मेरे हृदय में नहीं। जिस प्रकार सूर्य कुमुदिनी पुष्प को तो संताप देता ही है, पर चाँद की सारी-की-सारी कान्ति हो छीन लेता है; उसी प्रकार यह प्रेम तुम्हें तो केवल तप्त कर रहा, पर मुझे भस्म ही किए देता है।

इस प्रकार राजा के अचानक प्रगट होजाने से सबको अचम्भा हुआ। दोनों सखियों ने राजा का स्वागत किया और उन्हें एक शिला पर बैठा दिया। सखियाँ राजा से भांति-भांति के प्रश्न पूछने लगीं।

उस समय राजा ने बड़े गर्व से कहा––मेरे लिए केवल दो ही ऐसी वस्तुएँ हैं जिनका मैं सर्वाधिक आदर करता हूँ। एक तो पृथ्वी, दूसरी शकुन्तला।

राजा की इन बातों से सखियों को उन पर दृढ़ विश्वास होगया। किसी-न-किसी बहाने से दोनों सखियाँ वहाँ से चली गईं और उन्होंने दुष्यन्त और शकुन्तला को आपस में बातें करने का अवसर दे दिया। राजा ने बार-बार शकुन्तला को वचन दिए कि वह उसे नगर पहुँचते ही अपने अन्तःपुर में बुला लेंगे और उसके साथ विवाह कर लेंगे।

शकुन्तला ने अधीर होकर पूछा––कब तक ? दुश्यन्त ने उसके हाथ में अपनी अंगूठी दे दी। उस पर उनका नाम लिखा था। दुश्यन्त बोले––इसके एक अक्षर से तुम एक दिन गिनना। अभी इसके सारे अक्षर नहीं गिन पाओगी कि मेरे नौकर तुम्हें बुलाने आ जाएँगे।

शकुन्तला को विश्वास और धीरज देकर राजा ने अपने नगर की ओर प्रस्थान किया। शकुन्तला राजा के विरह में तड़फती हुई अंगूठी के अक्षरों को प्रतिदिन गिनने लगी।

: ४ :

राजा तो चले गए, पर शकुन्तला सदा उन्हीं के ध्यान में रहने लगी। उसकी यह स्थिति देखकर दोनों सखियों को चिन्ता होने लगी कि यदि राजा शकुन्तला को भूल गए तो क्या होगा। प्रियम्वदा ने अपने और अनसूया के हृदय को दिलासा देते हुए कहा—राजा से ऐसी आशा नहीं करनी चाहिए। उसकी विशेष आकर्षक आकृति ही उसके आन्तरिक गुणों का बखान करती है।

तभी, एक दिन की बात है। शकुन्तला राजा दुष्यन्त के ध्यान में मग्न बैठी थी कि महाक्रोधी दुर्वासा आगए। दुर्वासा का क्रोध संसार प्रसिद्ध है। ज़रा-सी भूल पर भी वे क्रुद्ध हो जाते हैं। शकुन्तला का इस ओर ध्यान ही नहीं था। इसलिए उसने दुर्वासा का सन्तोषजनक स्वागत न किया। महाक्रोधी दुर्वासा की क्रोधाग्नि भभक उठी। उन्होंने शाप दिया कि तू जिसका चिन्तन कर रही है, वह तुझे भूल जाएगा।

शाप देकर दुर्वासा चल दिए। इसका पता जब दोनों सखियों को चला तो उन्होंने महामुनि के पाँव पकड़ लिए। कुछ शान्त होकर मुनि ने कहा—यदि शकुन्तला कोई चिन्ह दिखा देगी तो उसे देखते ही

राजा की स्मृति जाग उठेगी।

दोनों को यह सुनकर थोड़ा धैर्य हुआ। वे शकुन्तला की सुध-बुध लेने को उसकी कुटी में गईं। शकुन्तला समाधिस्थ-सी बैठी दुष्यन्त का चिन्तन कर रही थी। प्रियंवदा ने अनसूया को चेतावनी देते हुए कहा—सखी! शकुन्तला को शाप की बात बताकर चमेली को गरम पानी से सींचने का प्रयास न करना!

दोनों ने आपस में विचार किया और शाप से शकुन्तला को अनभिज्ञ रखा। कुछ ही दिनों बाद मुनि कण्व आश्रम में पधारे।

प्रातःकाल का समय था। सूर्य उदय हो रहा था और पूर्ण चन्द्र की शान्ति क्षीण होती जा रही थी। प्रिय-प्रवास के समय उदास प्रिया की भांति कमलिनी भी मुरझाई जा रही थी! तभी अनसूया अपनी कुटी से निकली। शकुन्तला की गर्भवती स्थिति का ध्यान आते ही वह उदास होगई।

उसने विचार किया—यदि मुनि कण्व को शकुन्तला और दुष्यन्त के प्रेम-परिणय का पता चल गया तो वे क्या कहेंगे? फिर यह बात छिपी भी तो नहीं रह सकती!

अनसूया अभी इस प्रकार विचार कर ही रही थी कि प्रियवंदा वहाँ आ पहुँची । आते ही उसने प्रश्न किया——अनसूया, तूने कुछ सुना ?

अनसूया ने प्रश्न किया——क्या ?

तुम्हें मालूम नहीं क्या ? अभी-अभी मैं शकुन्तला से उसके स्वास्थ्य के विषय में पूछने गई थी । उसी समय वहां कश्यप मुनि पधारे। आते ही उन्होंने शकुन्तला को छाती से लगा लिया । फिर बोले——पुत्रि ! जिस प्रकार विद्या सुशिष्य के पास पहुँच कर चरितार्थ होती है उसी प्रकार तू भी योग्य पति पाकर कृतार्थ हुई है । अब मैं तुझे शीघ्र ही तेरे पति के पास पहुँचा दूँगा ।

अनसूया ने पूछा——तो यह समाचार पिता कश्यप को सुनाया किसने ?

कहते हैं कि ज्यों ही उन्होंने आश्रम में प्रवेश किया, किसी ने उन्हें सूचित किया कि महामुनि ! दुष्यन्त की कृपा से तुम अपनी शकुन्तला को गर्भ में अग्नि रखने वाले शमी वृक्ष की भाँति समझ लो ।

प्रियंवदा ने इतना कहा और अनसूया को साथ लेकर वह शकुन्तला के श्रृंगार के लिए सामग्री एकत्रित करने लगी । रेशम से कोमल और चन्द्र के समान

निर्मल वल्कल वृक्षों से लाये गए लाक्षारस से शकुन्तला के चरणों को अलंकृत किया गया । वृक्ष तथा लता से सुन्दर-सुन्दर पुष्प एकत्रित किए गए और उनसे शकुन्तला को सुसज्जित किया गया । शकुन्तला को विदा करने के लिए मुनि कश्यप स्वयं उसके साथ-साथ हो लिए । बार-बार आँखें आँसुओं से भर आती थीं । उस समय ठीक प्रकार से किसी को देखना तक दुष्कर हो रहा था । पुत्री के भावी वियोग से महामुनि का हृदय बार-बार भर आता था । उसी समय गौतमी भी वहाँ उपस्थित हो गई । गौतमी कण्व की पत्नी का नाम था । कुछ दूर चलने पर गौतमी ने शकुन्तला से कहा—पुत्रि ! देख तेरा पिता अपने आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्रों से तेरा आलंगिन-सा कर रहा है । ये तेरे पिता हैं, तेरे गुरु हैं । तू इन्हें नमस्कार कर ।

शकुन्तला ने उन्हें नमस्कार किया । कण्व ने उसे पतिप्रिया होने का वर दिया । शकुन्तला शार्ङ्गरव आदि अपने सहपाठियों के साथ चलने लगी तो उस समय कश्यप ने स्नेहिल हृदय से वृक्षों को सम्बोधित करके कहा——

हे वृक्षो ! जो शकुन्तला तुम्हें सींचे बिना स्वयं जल नहीं पीती थी, पुष्पों के आभूषण पहनने की

इच्छा होने पर भी तुम्हें पीड़ा न हो इसलिए पुष्प तोड़ती न थी, पुष्प-फल लगने से पहले और उनसे वृक्षों तथा पौधों के ढक जाने पर जो उत्सव मनाया करती थी, वही शकुन्तला आज तुम्हें छोड़कर पति-गृह को जा रही है। तुम सब उसे आशीर्वाद दो।

एकाएक एक कोयल आम के वृक्ष से कूक उठी। उसकी कूक उस समय ऐसी लगी, मानो वन देवता ने शकुन्तला को आशीर्वाद दिया हो। शकुन्तला आगे बढ़ी। वनज्योत्स्ना नाम की लता, जिसे शकुन्तला ने अपने हाथों सींचा था, वृक्ष का सहारा लेकर खड़ी थी। उसे देखते ही शकुन्तला का सखी-प्रेम उमड़ पड़ा। लता की छोटी-छोटी शाखाएं हवा में झूम रही थीं। उसे ही निमंत्रण समझ कर शकुन्तला ने वनज्योत्स्ना की उन दोनों शाखाओं को अपने गले में डाल लिया और फिर रो पड़ी। बोली—बहिन, मैं जा रही हूँ। आज अन्तिम बार मैं तेरी भुजाएँ अपने गले में डाल कर मिल लेना चाहती हूँ।

वह कुछ और आगे बढ़ी थी कि मृगशावक उसके साथ-साथ चलने लगा। उसे देखकर कण्व बोले—पुत्रि ! इसे देख। बाल्यकाल में इसका मुख तीक्ष्ण-कुशाग्रों से छिल गया था। इस मातृविहीन मृग की

उस समय तूने ही इंगुदी का तेल लगाकर परिचर्या की थी। एक-एक मुट्ठी घास खिलाकर तूने ही इसे पाला था। अब यह किस प्रकार तेरा साथ छोड़ेगा।

शकुन्तला ने उसे गोद में उठा लिया, प्यार किया और फिर बोली—मैं कठोर तो अब जा रही हूँ, तू मेरा साथ छोड़ दे। मेरे बाद तेरी चिन्ता तेरा पिता करेगा।

अब सरोवर आ गया था। वहाँ पर सब रुक गए। शकुन्तला बिलख-बिलख कर अपनी सहेलियों से मिली। उसकी विदा के समय सारा वन उदास हो गया। भरे हृदय से कश्यप ने गौतमी के साथ शकुन्तला को विदा दी।

: ५ :

महाराज दुष्यन्त राजकार्य से निपटकर महल की ओर विश्राम करने जा रहे थे। मार्ग में उन्हें कंचुकी मिल गया। उसने प्रणाम किया और निवेदन किया कि महामुनि कण्व का संदेश लेकर कुछ तपस्वी पधारे हैं। वे महाराज से मिलना चाहते हैं। उनके साथ कुछ महिलाएँ भी हैं।

आवश्यक कार्यों से निपटकर महाराज ने उन

सब तपस्वियों से बातचीत की। कुशल-क्षेम के प्रश्न-उत्तर के उपरान्त शार्ङ्गरव अपने आसन से उठा और सादर बोला——राजन्, आज का दिन कितना सौभाग्यशाली है। महर्षि कण्व ने अपनी कन्या शकुन्तला को आपकी सेवा में भेजा है और कहा है कि आप दोनों ने परस्पर प्रेम के वशीभूत होकर गन्धर्व विवाह कर लिया है, मैं उसे सहर्ष स्वीकार करता हूँ। आप दोनों की अनुपम जोड़ी अति सुन्दर है। ऐसा लगता है कि ब्रह्मा ने यह शुभ कार्य करके अपने पिछले समस्त पाप धो दिये। यह तुम्हारा सौभाग्य है कि शीघ्र ही तुम्हें शकुन्तला के गर्भ से एक कुल दीपक प्राप्त होगा। मेरा आप सबको आशीर्वाद।

मुनिशिष्य के यह वाक्य सुनते ही महाराज की मुखमुद्रा ही बदल गई। उस समय उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई दुःस्वप्न देख रहे हैं। मुनि कण्व, शकुन्तला, विवाह और फिर गर्भवती। ये सब बातें क्रमशः उनके मस्तिष्क में गूंजने लगीं। उन्हें कुछ समझ ही नहीं आ रहा था। वे दुःखी होकर बोले——

तुम किसकी कथा किससे कह रहे हो मुनिपुत्र ? तुमने अभी तक जो कुछ भी कहा, मैं कुछ न समझ सका।

शकुन्तला को तो उस समय ऐसा आभास हुआ मानो किसी ने उसे जीवित ही अग्नि में धकेल दिया हो। यह वचन सुनकर वह काँप उठी। उसका रक्त-कमल-सा सुन्दर मुख पीला पड़ गया। शार्ङ्गरव को भी आश्चर्य हुआ। वह दुःखी होकर बोला——महाराज, किए कर्म से खीजना आपको शोभा नहीं देता। आप ज़रा से स्वार्थ के कारण धर्म से विमुख हो रहे हैं। आप जैसे महानुभाव के लिए यह योग्य नहीं है।

यह असत्य है, केवल कल्पनामात्र है। दुष्यन्त कभी कोई ऐसा कर्म नहीं करता जिससे उसका अपयश हो। सारा संसार इस बात का साक्षी है–दुष्यन्त बोले।

शकुन्तला के हृदय की गति तेज़ होती जा रही थी। मन पश्चात्ताप, क्रोध और अपमान की ज्वाला में झुलस रहा था। उसी समय गौतमी ने शकुन्तला का घूंघट उठा दिया। शकुन्तला की आकृति देखकर भी दुष्यन्त उसे न पहचान सके। उसी प्रकार दुःखी स्वर में वे फिर बोले——देखो ! मैंने बहुत स्मरण किया [मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि मैंने इसको कभी स्वप्न में भी स्वीकार नहीं किया।] अब आप ही बताएँ, ऐसी परिस्थिति में मैं इस गर्भवती को कैसे स्वीकार कर सकता हूँ।

शार्ङ्गरव को इन बातों पर क्रोध आ गया। शकुन्तला से वह बोला—शकुन्तला! हमने जो कुछ कहना था कह दिया। अब तुम स्वयं इनसे बात कर लो।

शकुन्तला दुष्यन्त की बातें सुनकर पहले ही निराश हो चुकी थी। पर फिर भी उन्हें स्मरण कराते हुए बोली—पौरव! तुम राजाओं के मुकुटमणि हो। तुम्हें ऐसी छलना शोभा नहीं देती। प्रथम तो तुमने मुझ तपोवासिनी-भोली कन्या को अपने प्रेमपाश में फंसा लिया। अपनी मीठी-मीठी बातों तथा झूठी प्रतिज्ञाओं से मुझे ठग लिया और अब मुझे अस्वीकार कर रहे हो। यह तुम्हारे जैसे देवपुरुषों को शोभा नहीं देता।

यह सुनकर घृणा से राजा शकुन्तला की ओर देखकर बोले—अपनी इन बातों से तुम अपने कुल को और साथ ही साथ मुझे भी कलंकित कर रही हो। तुम वह उमड़ी हुई नदी हो जो अपने बहाव में तटवर्ती वृक्षों को भी उखाड़ फैंकती है और साथ में अपना जल भी गन्दा करती है।

शकुन्तला बोली—यही बात है तो तुम्हारी दी हुई निशानी को दिखाकर मैं इस आशंका को समाप्त किए देती हूँ।

इतना कहकर शकुन्तला ने अपनी अंगुली से महाराज दुष्यन्त की दी हुई अंगूठी उतारनी चाही। पर अंगुली में अंगूठी न देखकर उसे महान् आश्चर्य हुआ। तभी गौतमी बोली—पुत्रि! प्रतीत होता है कि शची-तीर्थ के जल में वह अंगूठी अंगुली से निकल कर गिर पड़ी है।

इस बात पर मुस्कराकर दुष्यन्त व्यंग्य करते हुए बोले—स्त्रियों में यह प्रसिद्ध है कि उनकी सूझ अनोखी होती है। स्वार्थ उसकी नस-नस में समाया होता है। कोयल को ही देखो, जबतक बच्चे उड़ने योग्य नहीं हो जाते तब तक वह उनका पालन कौए से करवाती है।

यह सुनकर शकुन्तला का क्रोध और उमड़ पड़ा। वह आवेश में भरकर बोली—तुम आर्य नहीं अनार्य हो। धर्म का भेस धारण करके तुम कपट करते हो। तुम राजा हो, तुम प्रजापालक हो। ऐसे प्रजापालक राजाओं का अनुकरण कौन करेगा? तुम्हारी महानता पर विश्वास करके मैं ठगी गई। मुख में राम बगल में छुरी रखने वाले कपटी के हाथों पडकर आज मेरा यह अपमान हुआ।

शकुन्तला की हिचकियाँ बंध गईं। आँसुओं की

धारा उसकी आँखों से बह चली। सब ऋषिपुत्र और गौतमी उसे वहीं छोड़कर चले गए। दयावश राजा के पुरोहित ने शकुन्तला को अपने पास रख लिया। पर शकुन्तला का रुदन उसकी माता मेनका से न देखा गया। अतएव वह वहाँ से भी अपनी पुत्री को ले गई।

: ६ :

नगर के प्रमुख बाजार में एक धीवर कीमती अंगूठी लिए बेच रहा था। उसे राजा दुष्यन्त के सैनिकों ने देख लिया। सन्देह होने पर उन सैनिकों ने मुद्रा उससे लेकर देखी। उस पर राजा दुष्यन्त का नाम खुदा हुआ था। सैनिकों को उस मुद्रा को देखकर और सन्देह हुआ और धीवर को चोर समझ कर वे कोटपाल के पास ले गए। कोटपाल उस समय आजकल के कोतवाल के समान रक्षकों का अधिकारी होता था। कोटपाल धीवर को राजा के पास ले गया और उसे चोर बताकर उन्हें प्रमाण रूप में वह अंगूठी दे दी। अंगूठी को देखते ही दुर्वासा ऋषि का शाप शान्त हो गया और राजा की आँखों के आगे शकुन्तला का सुन्दर मुख आ गया। शकुन्तला का ध्यान आते ही राजा की आँखें बन्द हो गईं। उन्होंने अपनी प्यारी शकुन्तला का अपमान किया था। यह बात उनके

दिल पर वज्र के समान प्रहार करने लगी। उनकी आँखें आँसुओं से भर आईं। पर उस समय वे राज-सिंहासन पर बैठे थे। उन्होंने किसी प्रकार अपने दुःख को अपने आप ही पी लिया और फिर शान्तचित्त हो कर पूछने लगे--मित्र ! तुम्हें यह मुद्रा कैसे प्राप्त हुई ?

कोटपाल बोला--महाराज ! एक धीवर मछली पकड़ने का काम करता है। एक दिन जब उसने एक बड़ी मछली का पेट चीरा तो उसके पेट में यह अंगूठी थी। इसे मूल्यवान् समझ कर और अपनी निर्धनता का ध्यान करके वह इसे बेचने ले आया।

इस उत्तर को सुनते ही राजा ने कोषाध्यक्ष को आज्ञा दी कि धीवर को निर्धन से धनवान् बना दिया जाए। राजा की उस आज्ञा से सब सभासद् आश्चर्य में आगए। राजा दुष्यन्त राज-सिंहासन छोड़ कर अन्तःपुर की ओर विश्राम करने के लिए चले गए। वहाँ पहुँचते ही शकुन्तला की स्मृति उन्हें बार-बार उनके किए पर धिक्कारने लगी। वे फूट-फूट कर विलाप करने लगे। जब कुछ हृदय शान्त हुआ तो उन्होंने शकुन्तला की स्मृति में उसका चित्र बनाना प्रारम्भ किया। चित्र पूर्ण हो गया तो वे उसकी सुन्दरता से

इतने विमुग्ध हो गए कि उसे सजीव शकुन्तला समझ कर उसी से बातें करने लगे। महाराज को इस प्रकार चित्र से बातें करते देख कर विदूषक माढ़व्य को चिन्ता हुई। राजा को कन्धों से पकड़कर और हिलाकर वह बोला—मित्र! यह क्या कर रहे हो। यह तो चित्र है।

राजा की आँखें खुल गईं। उन्होंने माढ़व्य को इस प्रकार देखा मानो वह स्वप्न देख कर जाग उठे हों। कुछ क्षण बाद आत्मचेतना आने पर वे माढ़व्य से बोले—मित्र! तुमने यह क्या किया। बड़े प्रयत्नों के बाद मैं अपनी शकुन्तला को पा सका था। पर तुमने चित्र है, यह कहकर मेरी शकुन्तला को मुझ से छीन लिया।

माढ़व्य ने राजा को धीरज बँधाया। कुछ धैर्य होने पर राजा फिर शकुन्तला की ही बातें करने लगे। फिर बोले—मित्र! तुम मेरे साथ तपोवन में भी गए थे। तुम्हें मेरे और शकुन्तला के प्रेम के विषय में भी पूरा पता था। मैंने स्वयं ही तुम्हें सारी की सारी घटना स्वयं कह सुनाई थी। फिर तुमने शकुन्तला के यहाँ आने और मेरे द्वारा उसके अपमानित होने के समय क्यों नहीं मुझे वे सब बातें याद दिलाईं!

विदूषक बोला—आपने मुझे बताया तो सब कुछ था पर मेरे नगर की ओर वापस आते समय यह भी तो कहा था कि मेरी और शकुन्तला की प्रेम-कहानी केवल कल्पना है। तुम विश्वास न करना।

यह सुनकर राजा को अपने पर और भी क्रोध आया और उसने अपना माथा पीट लिया। महाराज दुष्यन्त के शोक की कोई सीमा न रही और वे विलाप करने लगे।

इसी प्रकार समय व्यतीत हो गया। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते राजा के हृदय में शकुन्तला का शोक बढ़ता जाता। कुछ वर्ष यूँ ही बीत गए कि एक दिन देवराज इन्द्र का सारथि मातलि रथ लेकर राजा के सामने उपस्थित हो गया। उसने महाराज को देवराज इन्द्र का सन्देश सुनाते हुए देवासुर संग्राम की सारी कहानी कह सुनाई। फिर निवेदन करते हुए बोला—महाराज, इस समय आपका वहाँ चलना अत्यन्त आवश्यक है। आपके सहयोग से हम आसानी से राक्षसों पर विजय पा लेते हैं।

दुष्यन्त देवराज के निमन्त्रण पर स्वर्ग जाने को तैयार होगए। मातलि के साथ ही रथ पर बैठकर वे देवताओं की सहायता करने के लिए स्वर्ग चल दिए।

देवासुर संग्राम हुआ। देवताओं की विजय हुई। महाराज दुष्यन्त के पराक्रम से देवराज अत्यधिक प्रसन्न हुए। उन्होंने दुष्यन्त का बड़ा आदर किया और फिर उन्हें स्वदेश जाने को विदा किया। राजा दुष्यन्त मातलि के साथ रथ पर बैठ कर भूमि की ओर आ रहे थे कि मार्ग में कश्यप मुनि का आश्रम पड़ा। कश्यप मुनि को प्रणाम करने के लिए दुष्यन्त वहीं उतर पड़े। ये कश्यप इन्द्र के गुरु थे। मातलि उनसे भलीभांति परिचित था। अतः मातलि ने राजा को तो अशोक वृक्ष के नीचे ठहरा दिया और स्वयं कश्यप मुनि को उनके आगमन की सूचना देने चला गया। उसी समय राजा ने सुना, कोई कह रही थी--चपलता मत कर।

राजा सोचने लगा--यहाँ कौन चपलता कर रहा है? जिधर से शब्द सुन पड़ा था, राजा उसी ओर बढ़ गया। राजा ने देखा, एक बालक सिंह के बच्चे को गोद में उठाए खड़ा था। सिंह का बच्चा अभी माँ का आधा ही दूध पी पाया था कि बालक ने उसे खींच लिया। राजा का वात्सल्य प्रेम उस बालक को देखकर उमड़ रहा था। बालक निर्दयता से सिंह के बच्चे से खेल रहा था। तपस्विनी उसे समझा रही थी। बार-बार

उसे किसी दूसरे खिलौने का प्रलोभन दे रही थी। राजा सामने खड़ा सब कुछ देख रहा था। तभी बालक ने सिंह शिशु का निचला ओठ खींच लिया। इस पर तपस्विनी ने राजा से सिंह शिशु की रक्षा करने का अनुग्रह किया। राजा ने बालक के विषय में जानने की उत्कण्ठा प्रगट की। तपस्विनी ने बताया कि यह बालक ऋषिकुमार नहीं, कुरुवंश का कुल-कमल है। इस पर राजा ने बालक के पिता का नाम जानना चाहा। पर तपस्विनी के उत्तर ने कि पत्नी का त्याग करने वाले मनुष्य का कौन नाम ले, राजा को और विह्वल कर दिया। तभी सुव्रता नाम की तपस्विनी ने एक खिलौना, मोर लाकर बालक को दिया। तपस्विनी बोली--पुत्र! इस शकुन्त-लावण्य को देख।

संस्कृत में शकुन्त पक्षी को कहते हैं और लावण्य का अर्थ है सुन्दरता। परन्तु अपनी मां शकुन्तला से शकुन्त-लावण्य शब्द की समानता के भ्रम में पड़कर बालक ने पूछा--मेरी माँ कहाँ है?

इस पर तपस्विनी बोली--माता के नाम की समानता से यह बालक भ्रम में पड़ गया है।

तभी सुव्रता घबड़ा गई। बालक का हाथ देखकर वह बोली--सखि! इसका रक्षा-कवच कहाँ है?

सिंह से संघर्ष करते समय गिर गया होगा— तपस्विनी ने उत्तर दिया। रक्षा-कवच राजा के पास ही पड़ा था। राजा ने उसे उठा लिया। इसपर उन दोनों को महान् आश्चर्य हुआ। राजा ने जब इस आश्चर्य का कारण पूछा तो सुव्रता बोली—

महाराज! यह अपराजिता नाम की दिव्य ओषधि है। भगवान् कश्यप ने यह ओषधि इस बालक की भुजा में बाँधी है। यदि इसके माता-पिता के अतिरिक्त कोई दूसरा इसे छू ले तो यह सर्प बनकर उसे डस लेगी।

यह सुनकर राजा को विश्वास हो गया और महान् हर्ष हुआ। राजा के आगमन का वृत्तान्त सुनाने के लिए दोनों तपस्विनी शकुन्तला के पास चली गईं। बालक भी जाने लगा तो राजा बोले—पुत्र, मेरे साथ चलकर माता को आनन्द दो।

इस पर बालक बोला—तुम मेरे पिता नहीं हो। मेरे पिता तो राजा दुष्यन्त हैं।

राजा को अब पूर्ण विश्वास हो गया। उन्होंने स्वयं शकुन्तला से क्षमा माँगी। इतने में मातलि ने दोनों को भगवान् कश्यप का सन्देश कह सुनाया। राजा और शकुन्तला भगवान् कश्यप के पास गये। वहाँ अदिति भी विराजमान थीं। राजा और शकुन्तला ने दोनों को प्रणाम किया। दोनों ने उन्हें आशीर्वाद दिया।

भगवान् कश्यप ने महर्षि कण्व के आश्रम की ओर शकुन्तला और दुष्यन्त के मिलन का सन्देश ले कर अपने शिष्य गालव को भेज दिया। राजा भी शकुन्तला तथा बालक को साथ लेकर अपनी राजधानी की ओर लौट पड़े।



विक्रमोर्वशी

: १ :

महाराज पुरुरवा का रथ शीघ्रगति से आकाश में उड़ रहा था। महाराज सूर्योपासना करके लौट रहे थे। अचानक उन्होंने सारथि को रथ रोकने की आज्ञा दी। कहीं से "रक्षा करो, रक्षा करो, देवताओं के सहायको, हमारी रक्षा करो।" का स्वर उन्हें सुनाई दिया। वीर पुरुरवा पलक मारते ही उस स्थान पर पहुँच गए। वहाँ उन्हें रम्भा, मेनका, सहजन्मा आदि अप्सराएं खड़ी मिलीं। भय से उनका रोम-रोम कांप रहा था, आकृति पीली पड़ गई थी। राजा को देखते ही रम्भा आगे बढ़ी और हाथ जोड़ कर विनय करती हुई बोली—

महाराज रक्षा करें! हम इन्द्र की अप्सरा हैं दुष्ट राक्षस केशी हमारी दो सखियों, उर्वशी और चित्रलेखा को हर कर ले गया है। व्याध के पंजों में हरिणी फँस गई है महाराज! शीघ्र रक्षा करो।

उन्हें अधिक भयभीत देखकर पुरुरवा ने सान्त्वना दी और फिर अपना रथ केशी के पीछे दौड़ा दिया।

थोड़े ही समय में पुरुरवा ने केशी को पकड़ लिया। दोनों योद्धाओं के रथ आमने-सामने खड़े हो गए। सिंह की भांति क्रोध से गरजकर पुरुरवा केशी पर टूट पड़े। उनके भीषण प्रहारों से सन्त्रस्त होकर केशी दोनों अप्सराओं को वहीं छोड़कर भाग खड़ा हुआ। महाराज पुरुरवा ने स्वयं उर्वशी और चित्रलेखा के बन्धन खोले, उन्हें ढ़ाढ़स दिया और फिर रथ पर बिठाकर वापस मुड़ चले!

राजा पुरुरवा को उर्वशी और चित्रलेखा सहित सकुशल वापस आता देखकर रम्भा आदि अप्सराओं को मानो जीवन मिल गया! आगे बढ़कर उन्होंने राजा का स्वागत किया और अपनी दोनों प्राणप्रिय सहेलियों को रथ से नीचे उतारा! राजा पुरुरवा की इस विजय पर सब उन्हें बार-बार बधाई देने लगीं। देवराज इन्द्र के सारथी चित्ररथ अपना रथ लेकर वहाँ उपस्थित हो गए। राजा को सादर नमस्कार करने के उपरान्त वे बोले--

महाराज! इस विजय पर मैं आपको बधाई देता हूँ। आपने महाराज इन्द्र की प्रियसेविका उर्वशी और चित्रलेखा की रक्षा करके उनका बड़ा उपकार किया है। अभी कुछ समय पूर्व श्री नारद जी के द्वारा

जब महाराज को उर्वशी-हरण की सूचना मिली तो उन्होंने एक विशाल सेना केशी को पराजित करने के लिए भेजी थी। पर मार्ग में भाटों द्वारा आपके जय-जयकार सुनकर और उर्वशी और चित्रलेखा की रक्षा का समाचार सुनकर सेना वापस चली गई। आप धन्य हैं महाराज! आपका पराक्रम धन्य है जो दीनों की रक्षा करता है।

महाराज पुरुरवा ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया--ऐसा न कहो चित्ररथ! इस विजय में मैं निमित्तमात्र हूँ। यह सब तो देवराज इन्द्र का ही प्रताप है। उन्हीं के प्रताप से हम कभी-कभी सेवा के योग्य बन पाते हैं।

पुरुरवा की इस नम्रता पर चित्ररथ गद्गद् हो गया। बोला--

यह आपकी महानता है राजन्! वीर पुरुष सदा नम्र होते हैं। आपके इन्हीं गुणों पर मुग्ध होकर तो महाराज आपको अपनी विजयिनी सेना का सेनापति बनाते हैं। इस समय आपकी इस सामायिक सहायता के लिए वे आपके महान् कृतज्ञ हैं। उन्होंने आपको अपनी सभा में सादर निमन्त्रित किया है।

इस पर पुरुरवा कुछ विचारकर बोले--सारथि!

देवराज इन्द्र को मेरा सादर नमस्कार कहना ! मेरी ओर से उन्हें निवेदन करना कि सेवक सदा आज्ञा पालन को प्रस्तुत है। परन्तु इन दिनों में राज्य के प्रबन्ध आदि में अधिक व्यस्त हूँ, अतः क्षमा चाहता हूँ।

फिर उर्वशी आदि अप्सराओं की ओर देखकर पुरुरवा बोले—मित्र ! अब आप निर्भय होकर इन देवियों को महाराज इन्द्र के पास ले जाएँ।

महाराज पुरुरवा ने उर्वशी की ओर देखा। उसका अपूर्व स्वर्गीय सौन्दर्य देखकर वे चकित रह गए। उनके वेसुध नयन उर्वशी की रूप-सुधा का पान करने लगे। कुछ क्षण उपरान्त सचेत होने पर वे बोले—

सुन्दरी उर्वशी यदि चाहती हैं तो अवश्य स्वर्ग लोक को पवित्र करें। पर फिर कभी दर्शन देकर अवश्य कृतार्थ करें।

राजा पुरुरवा के इन शब्दों ने उर्वशी के कानों में अमृत घोल दिया। वह अपनी सहेलियों के साथ रथ की ओर बढ़ी। चलते समय अनायास ही उसकी मौक्तिक माला किसी लता में उलझ गई।

माला छुड़ाते समय उसने पुरुरवा की ओर स्नेह-सिक्त नयनों से देखा। वह सखी चित्रलेखा से बोली—

सखि ! देखती क्या है ! मेरी माला उलझ गई है, इसे सुलझा दे।

चतुर सखी मुस्करा कर बोली—यह तो भली भांति उलझ गई है। कैसे सुलझेगी ! अस्तु, फिर भी प्रयत्न करती हूँ।

चलते समय उर्वशी अपने को न रोक सकी। उसने फिर राजा पुरुरवा को देखा, जैसे वह नयनों द्वारा राजा पुरुरवा का चित्र अपने मानस-पटल पर खींच रही हो। राजा भी उर्वशी की अद्भुत छवि से विमोहित-से, ठगे-से उसकी ओर देख रहे थे। वह देखते रहे और तब तक देखते रहे जब तक चित्ररथ का रथ आंखों से अोझल न हो गया। उर्वशी की उस अनुपम छवि को आंखों में बसाकर महाराज पुरुरवा भी अपनी राजधानी प्रतिष्ठानपुर की ओर वापस मुड़ चले।

: २ :

राजा पुरुरवा राजमहल में पहुँचे। यथासमय रानी औशीनरी ने उन्हें भोजन के लिए आमन्त्रित किया। वह पास बैठकर उन्हें भोजन कराने लगी। पर राजा का मन भोजन में न था। रह-रहकर उन्हें उर्वशी का ध्यान आजाता। केशी से युद्ध, उर्वशी की

रक्षा, उर्वशी का सौन्दर्य, उर्वशी का अपलक देखना और फिर राजा का स्वयं उसके प्रति आकर्षित होना, सब कुछ उन्हें बार-बार आंखों के सामने होता-सा दीखता था। भोजन, राजमहल, सेवक, किसी में उनके लिए आकर्षण नहीं था। महाराज की यह अन्य-मनस्कता रानी से छिपी न रह सकी। उन्होंने महा-राज को अस्वस्थ जानकर विश्राम करने की सलाह दी। पर फिर भी उनके मन में सन्देह घर कर गया। वे विचारने लगीं–महाराज को यह कैसा उन्माद हो गया है? उनके मन में आज किस अलभ्य वस्तु की लालसा जाग उठी है? किसके शब्द महाराज के कानों में गूंज रहे हैं जो इन्हें कुछ और सुनाई ही नहीं देता? वह कौन-सी घटना है जिसने महाराज को मुझसे भी विरक्त बना दिया है? कहीं महाराज व्याधिग्रस्त तो नहीं हो गए?

इस चिन्ता के साथ-साथ महारानी की मानसिक व्याकुलता भी बढ़ती गई। उन्होंने अपनी प्रिय दासी निपुणिका को बुलाकर महाराज की उदासी का कारण जानने की आज्ञा दी। इस कार्य के लिए उन्होंने निपुणिका को माणवक के पास भेजा। माणवक महा-राज का प्रिय मित्र विदूषक था। प्रायः वह महाराज

के साथ ही रहता था। अतः स्वाभाविक रूप से उसे महाराज के समस्त गुप्तभेद भी ज्ञात रहते थे। उर्वशी और महाराज पुरुरवा के मिलन, प्रेम आदि की समस्त घटना उसे सत्य रूप से मालूम थी। महाराज ने उस घटना को छिपाए रखने का माणवक को आदेश दिया था। पर माणवक के लिए यह नितान्त असंभव कार्य था। अतः वह सबसे दूर एकान्त में, जहां महा-राज का रथ खड़ा रहता था, जाकर बैठ गया। पर निपुणिका खोजते-खोजते वहां भी जा पहुँची। निपु-णिका माणवक के साथ सटकर बैठ गई और मीठी-मीठी बातें करने लगी। कुछ ही देर में माणवक अपना-पराया भूल गया और निपुणिका के यह कहने पर कि महाराज को क्या हो गया है? जिस स्त्री के लिए वे मारे-मारे फिर रहे हैं, उसी का नाम लेकर महारानी को पुकारने लगे, माणवक चौंक पड़ा। झट बोला––तो क्या महाराज ने महारानी को उर्वशी कह कर सम्बोधित किया?

उर्वशी का नाम सुनते ही निपुणिका की आंखें खुल गईं। उसका काम पूरा हो गया था, फिर भी उसने अनजान बनते हुए पूछा––

यह उर्वशी कौन है?

माणवक हँसा, बोला—पगली, उर्वशी को सारा संसार जानता है और तू नहीं जानती ? अरी, अप्सरा है, स्वर्ग की अप्सरा। इतनी सुन्दर कि स्वर्ग में भी उसका सानी कोई नहीं। ठीक तुम्हारी जैसी।

इस हास्य पर निपुणिका मुस्करा दी और उठकर महारानी की ओर चल दी। अब माणवक को भी सूनापन अखरने लगा। सौभाग्य से उसे महाराज पुरुरवा आते दीख पड़े। वह आगे बढ़कर उन्हीं के साथ हो लिया। महाराज पुरुरवा का चित्त उर्वशी के बिना अशान्त था। माणवक ने उन्हें उद्यान में चलने की सलाह दी और दोनों उद्यान की ओर चल पड़े। पर उद्यान की बहती मन्द बयार महाराज को उर्वशी के आंचल का स्मरण दिलाने लगी। हिलते कोमल किसलयों ने उर्वशी के कर-कमलों की स्मृति करा दी, खिले हुए सुगन्धित पुष्पों को देखकर उन्हें उर्वशी का सुगन्धित सौन्दर्य स्मरण हो आया। वे विह्वल हो वहीं लताकुंज में एक शिला पर बैठ गए। कुछ क्षण यों ही बैठने के बाद उन्होंने अपना उलझा हुआ प्रश्न माणवक से पूछा—

मित्र, उर्वशी के दर्शन कैसे होंगे ? मेरा चित्त उससे मिलने को विकल हो रहा है।

माणवक कब चूकने वाला था ? हास्य तो सदा उसके अधरों पर अठखेलियां किया करता था। उसे समय-असमय का ध्यान कहां ? कुछ क्षण सोचने के बाद वह प्रसन्न होकर बोला—राजन् ! उर्वशी के दर्शन के लिए एक ही युक्ति है। लोग कहते हैं जो जागरण में नहीं दीखता वह स्वप्न में दिखाई दे जाता है। आप दो घड़ी सो क्यों नहीं लेते ?

इसी समय उर्वशी भी अपनी सखी चित्रलेखा के साथ वहां आई। दोनों को तिस्करणी विद्या आती थी। तिस्करणी विद्या के प्रभाव से व्यक्ति स्वयं तो सब को देख सकता है, पर कोई दूसरा उसे नहीं देख सकता। अतः महाराज पुरुरवा को दोनों अप्सराएँ भलीभांति देख रही थीं, उनकी बातें सुन रही थीं, पर पुरुरवा को उनका आभास तक न था। राजा को उदास बैठा देखकर वे दोनों एक ओर खड़ी हो गईं। दोनों राजा और माणवक की बातें सुनने लगीं।

माणवक की सलाह सुनकर राजा दुःखी होकर बोले—मित्र, उर्वशी के विरह में तो मुझे नींद भी नहीं आती ! अन्यथा मैं स्वप्न से भी अवश्य लाभ उठाता।

माणवक शान्त था। पर महाराज की बात सुन

कर उर्वशी को बार-बार रोमांच हो रहा था। वह अपने को न रोक सकी। उसने राजा को पत्र देना ही उचित समझा। भोज पत्र पर एक पत्र लिखकर राजा के सामने रख दिया। राजा ने उसे उठा कर पढ़ा और फिर माणवक को दे दिया। पत्र पाते ही राजा उर्वशी के दर्शनों को और भी विकल हो गये। वह बार-बार उर्वशी-उर्वशी कहकर पुकारने लगे। तब चित्र-लेखा प्रगट हुई। उसका स्वागत करने के बाद राजा ने संयत स्वर में कहा——चित्रलेखे ! गंगा-यमुना का संगम देखने के बाद मनुष्य कभी केवल यमुना को ही देख-कर सन्तुष्ट नहीं होता। अपितु उसकी गंगा के दर्शनों की लालसा और बढ़ जाती है। उसी तरह तुम्हारे दर्शन पाकर अब मैं उर्वशी के दर्शनों के लिए भी उत्कंठित हो रहा हूँ।

तभी उर्वशी प्रगट हो गई। राजा ने प्रेम-पुलकित हो उसका हाथ पकड़ कर उसे अपने पास बैठाया। पर अभी उर्वशी को वहाँ बैठे थोड़ा समय ही बीता था कि देवदूत ने उपस्थित होकर उर्वशी के लिए भरत-मुनि का संदेश कह सुनाया। भरतमुनि नाट्यकला के आचार्य हैं। उर्वशी उनके नाटक में अभिनय कर रही थी। अतः विवश होकर उसको स्वर्ग लोक जाना पड़ा।

अब राजा पुरुरवा ने उर्वशी के पत्र को पुनः पढ़ने की इच्छा प्रगट की। उन्होंने माणवक से पत्र माँगा। माणवक ने वह पत्र प्रमादवश कहीं खो दिया था। वह उसे खोजने लगा। पर जब खोजने पर भी वह पत्र न मिला तो उसने स्वाभाविक रूप से उत्तर दिया—— मित्र ! प्रतीत होता है वह पत्र भी उर्वशी के साथ ही साथ स्वर्ग को चला गया।

राजा इस उत्तर से खीज उठे। वे उत्तर में कुछ कहने वाले ही थे कि पत्र हाथ में लिए महारानी वहाँ आ पहुँचीं और उन्होंने आते ही वह पत्र महाराज पुरुरवा के हाथ में थमा दिया। लज्जा से पुरुरवा का मस्तक झुक गया। फिर कुछ सम्हलकर वे बोले——

महारानी का स्वागत है। आइए बैठिए।

महारानी औशीनरी प्रस्तुत घटना से अत्यधिक क्षुब्ध थीं। वायु के झोंकों से उड़ता हुआ वह पत्र उन-के पास तक पहुँच गया था। वे क्रोध से कांपती हुई बोलीं——

स्वागत मेरा क्यों ? अब तो किसी और का स्वागत होगा। मेरा तो अब अपमान ही अपमान है।

औशीनरी ने इतना कहा और फिर वापस चल दी। महाराज ने उन्हें बहुत रोका। बार-बार अनुनय-

विनय करके मनाया, पर रानी का क्रोध शान्त न हुग्रा। तब हार कर रानी का क्रोध शान्त करने के लिए पुरुरवा ने उसके पैर पकड़ लिए। पर रानी ने इसकी भी उपेक्षा की ग्रौर चली गई। राजा को इस का परिताप हुग्रा ग्रौर इस उपेक्षा के फलस्वरूप उन्होंने ग्रन्तःपुर में न जाने का निश्चय कर लिया।

: ३ :

स्वर्ग के समस्त देवता रंगमंच के ग्रागे ग्रपने-ग्रपने ग्रासनों पर विराजमान थे। भरतमुनि ने बड़े प्रयत्नों से 'लक्ष्मी-स्वयम्वर' नामक नाटक की रचना की थी। उसकी सफलता के लिए उन्होंने कई बार उर्वशी, मेनका ग्रादि ग्रप्सराग्रों को ग्रभिनय का ग्रभ्यास कराया था। ज्यों-ज्यों समय बीतता जा रहा था, देवताग्रों की व्याकुलता बढ़ती जाती थी।

यथासमय नाटक प्रारम्भ हुग्रा। उर्वशी लक्ष्मी का ग्रभिनय कर रही थी ग्रौर मेनका वारुणी का। स्वयम्वर के समय मेनका ने उर्वशी से प्रश्न किया——

लक्ष्मी ! स्वयम्वर में समस्त लोकपाल एवं देव-गण उपस्थित हैं। इनमें से तुम किसे हृदय से चाहती हो।

उर्वशी को प्रतिक्षण पुरुरवा का ही ध्यान लगा

रहता था। प्रेमवश उसे स्थान-स्थान पर, बात-बात में पुरुरवा ही पुरुरवा दीखते थे। फिर हृदय से चाहने का प्रश्न सुनकर ग्रनायास ही उसके मुँह से 'पुरुषोत्तम नारायण' के स्थान पर पुरुरवा निकल गया। पुरुरवा का नाम सुनना था कि सब दर्शक स्तब्ध रह गए। भरतमुनि के तो किए-कराए पर पानी फिर गया। उनके क्रोध की सीमा न रही। इस ग्रक्षम्य ग्रपराध के लिए उन्होंने उर्वशी को शाप दिया कि स्वर्ग में ग्रब उसका वास न होगा।

दर्शकों में देवराज इन्द्र भी विराजमान थे। उर्वशी की मानसिक स्थिति को वे भलीभाँति समझते थे। वे मुस्करा कर बोले——उर्वशी ! तू पुरुरवा से प्रेम करती है। पुरुरवा ने ग्रनेक बार देवासुर संग्राम में हमारी सहायता करके कई उपकार किए हैं। मैं उसका प्रत्युपकार करना चाहता हूँ। ग्रतः तू मर्त्यलोक में उसी के पास जाकर निवास कर। जब तक पुरुरवा तुझसे उत्पन्न ग्रपने पुत्र का मुँह न देख ले, तू वहीं रहना। उसके उपरान्त पुनः स्वर्ग वापस चली ग्राना।

उर्वशी को तो मानो मुंह-माँगा वरदान मिल गया। ग्रपनी सखी चित्रलेखा को साथ लेकर वह प्रतिष्ठानपुर की ग्रोर चल दी। उसने दूर से ही

महाराज को भाँति-भाँति की मणियों से सुशोभित महल पर माणवक के साथ बैठा देखा। तिस्करणी विद्या से अपने को छिपाकर दोनों वहाँ पहुँच गईं। माणवक राजा से कह रहा था—महाराज ! अभी रानी के पधारने में विलम्ब है। यह प्रिय-प्रसादन नाम का व्रत उन्होंने आपको ही प्रसन्न करने के लिए किया है।

राजा ने यह बात मान ली और फिर शान्त हो गए। तभी उदय होते हुए पूर्ण चन्द्र को देखकर माणवक की भूख जाग उठी। वह चन्द्र की ओर संकेत करके महाराज पुरुरवा से बोला—मित्र !, देखते हो, यह पूर्ण चन्द्र कैसा बूंदी के लड्डू के समान गोल-गोल है।

पहले तो महाराज को माणवक की इस बात से उसकी भोजनप्रियता पर हँसी आई, पर कुछ क्षण बाद ही चन्द्रवदनी उर्वशी का स्मरण हो आया। वे बार-बार उर्वशी के विषय में बातें करने लगे। राजा पुरुरवा को इस प्रकार अपने लिए संतप्त जानकर उर्वशी को लगा जैसे वह कृतार्थ हो गई है। उसी समय सामने से औशीनरी पूजा का थाल हाथ में लिए आती दीख पड़ी। महारानी ने स्वच्छ दुपट्टा ओढ़ रखा था। उनके शरीर पर मंगल-सूचक आभूषण सज रहे थे।

सुगन्धित केशों में दूर्वादल संजोया गया था। इस वेश-भूषा में उनका मधुर सौन्दर्य और भी निखर उठा था। औशीनरी को देखते ही महाराज उठकर खड़े हो गए। उन्होंने उसका हाथ पकड़ उसे पास बिठा लिया। रानी बोली—नाथ, मैं आपका पूजन करके एक विशेष व्रत पूर्ण करना चाहती हूँ। आप कृपा करके यहाँ बैठ कर मेरी घड़ी भर प्रतीक्षा करें। क्या आप यह कष्ट स्वीकार करेंगे ?

महाराज बोले—देवि ! कष्ट काहे का ! यह तो अनुग्रह है। भला यह व्रत किस बात के लिए है ?

महारानी को शान्त देखकर चतुर निपुणिका बोली—महाराज, इस व्रत का नाम प्रिय-प्रसादन है।

पुरुरवा बोले—देवि ! इसकी क्या आवश्यकता थी। क्यों व्यर्थ ही अपने शरीर को कष्ट देती हो।

पर रानी ने इसका कोई विशेष उत्तर न दिया और उठकर चल दी। थोड़े समय बाद उसने प्रसाद के लड्डू निपुणिका और माणवक को दिए और महाराज का पूजन करने के उपरान्त बोली—देव, मैं आज देवताओं को साक्षी करके वचन देती हूँ कि महाराज के किसी भी कार्य में मैं कोई बाधा न उपस्थित

करूँगी । मेरे प्रति महाराज का प्रेम कभी कम न हो, यही मेरे लिए बहुत है ।

तत्क्षण महाराज बोले—देवि ! यह तुम्हारा भ्रम है । मुझे जैसा तुम समझती हो मैं वैसा नहीं हूँ।

रानी बोली—आप चाहें जैसे भी हों । मैंने तो प्रिय-प्रसादन व्रत कर लिया है।

औशीनरी इतना कहकर चली गई। उसके जाने के बाद माणवक व्यंग्य कसते हुए बोला—

मित्र ! असाध्य रोगी की भाँति आपको भी महारानी ने भाग्य पर ही छोड़ दिया है ।

महाराज केवल मुस्करा दिए । इस समय उन्हें रह-रह कर उर्वशी का ध्यान आ रहा था । वे दिशाओं को साक्षी करके बोले—यदि कहीं भी उर्वशी हो तो वह आकर दर्शन दे । चित्रलेखे ! तुम्हीं मेरी प्राण-प्रिया को मेरे पास ले आओ । उससे कहो वह पीछे से आकर मेरी आंखें मूंद ले ।

इतना सुनते ही तिस्करणी विद्या का त्याग करके उर्वशी ने पीछे से राजा की आंखें मूँद लीं । स्पर्श मात्र से महाराज को रोमांच हो गया । उन्होंने हाथ पकड़कर उसे अपने पास बिठा लिया ।

तब महाराज ने उर्वशी से विवाह का प्रस्ताव

किया । उर्वशी ने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया । कुछ समय वार्तालाप में बीत जाने के बाद चित्रलेखा ने उर्वशी और पुरुरवा को हार्दिक बधाई दी और विदा लेकर स्वर्गलोक वापिस चली गई ।

: ४ :

उर्वशी को पाकर महाराज पुरुरवा अत्यधिक प्रसन्न हुए । उन्होंने राज्य का कार्यभार अपने मन्त्रियों पर छोड़ दिया और स्वयं उर्वशी के साथ कैलाश शिखर पर गंधमादन नाम के वन में निवास करने लगे । एक दिन महाराज पुरुरवा मन्दाकिनी के तट पर बैठे थे । उन्हें सामने बालू के टीले पर क्रीड़ा करती हुई एक विद्याधरी दीख पड़ी । अनायास राजा पुरुरवा कुछ क्षणों तक टकटकी लगाकर उसकी ओर देखते रहे । उर्वशी ने इसे देख लिया यह भला वह कब सह सकती थी ? क्रोध में उसने महाराज की अनुनय-विनय पर भी ध्यान न दिया और देवताओं के नियम को भूलकर कुमार वन में चली गई । कुमार वन में स्त्रियों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध था । जो भी स्त्री उस वन में जाती, लता बन जाती थी । क्रोध में भरकर उर्वशी ने ज्यूँ ही उसमें प्रवेश किया, वह भी लता बन गई ।

उर्वशी को खोजते-खोजते पुरुरवा कुमारवन में भी पहुँचे। वे स्थान-स्थान पर उर्वशी को खोजते, और जब न पाते तो विलाप करते। पृथ्वी, आकाश, वृक्ष, लता सभी से उन्होंने उर्वशी का पता पूछा। एक स्थान पर मोर घूम रहा था। पुरुरवा उसके पास जा पहुँचे। मोर के पंखों पर हाथ फेरते हुए वे पूछने लगे–प्रिय मोर ! तूही बता मेरी उर्वशी कहां है ? कहीं तूने उसे देखा है ? उसकी गर्दन हंस जैसी है, नयन कमल जैसे हैं ?

इतना सुनना था कि मोर ने नाचना प्रारम्भ कर दिया। पुरुरवा को अचरज हुआ, फिर कुछ विचार कर बोले---अब समझा कि तुम क्यों प्रसन्न होते हो। उर्वशी के न रहने पर अब तुम्हें अपने सुन्दर पंखों पर अभिमान हो जायगा। अन्यथा उसकी कोमल सुगन्धित केशराशि के सामने तुम्हारे पंखों को कौन पूछता ? तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहा। अतः तुम भी प्रसन्न हो लो।

राजा कुछ और आगे बढ़े। कोयल बैठी जामुन खा रही थी। राजा के पग रुक गए। उन्हें कुछ आशा बँधी। उन्होंने सोचा–यह मधुरभाषिणी कोयल अवश्य सहानुभूति रखती होगी। इससे उर्वशी का

पता पूछूं। राजा ने कोयल से पूछा, पर कोयल जामुन ही खाती रही, बोली कुछ भी नहीं। आश्चर्य से राजा ने कोयल को देखा। फिर बोले---कोयल तू भी उर्वशी की भांति मीठा बोलती है। तेरी वाणी सुनते ही चित्त खिल उठता है। इस समय तू मुझसे निरीह बनी है तो भी मैं तुझपर क्रोध नहीं करूँगा। जिसमें उर्वशी का गुण हो भला मैं उस पर क्रोध कर सकता हूँ ?

राजा अभी कुछ ही आगे बढ़ा था कि सरोवर तट पर राजहंस घूमता मिला। उसकी मदिर गति देखकर राजा प्रसन्न हो गया। उसके मन ने कहा कि उर्वशी को चुराने वाला मिल गया। वह हंस के पास गया और बोला---ऐ चोर ! मेरी उर्वशी दे। तूने उसे कहां छिपा रखा है ?

पर हंस ने कुछ भी उत्तर न दिया। राजा क्रोध में भरकर बोला---उत्तर क्यों नहीं देता ? यदि तूने मेरी उर्वशी को नहीं चुराया तो यह सुन्दर चाल कहां से चुराई है। तेरे पास मेरी प्राणप्यारी की गतिशीलता मिली है, अवश्य वह भी तेरे ही पास होगी।

इतना कहकर राजा ने ज्यूं ही राजहंस को पक-

ड़ना चाहा, वह उड़ गया। निराश राजा आगे बढ़ा। एक स्थान पर चकवें को बैठा देखकर उसे सहानुभूति की आशा हुई। उसने चकवे से भी वही प्रश्न किया। पर जब चकवा भी कुछ न बोला तो राजा को दुःख हुआ। वह बोले—मित्र चकवे ! मैं समझता था कि तुम भी जब चकवी के लिए तड़पते हो तो तुम्हें दुःख होता होगा। घायल की गति घायल ही जानता है। मैंने सोचा था, तुम मेरी वेदना को तोल सकोगे। और कुछ नहीं तो धीरज तो जरूर बधाओगे, पर तुम स्वार्थी हो। अपनी पीड़ा से ही तुम्हें सरोकार है। किसी के प्रति तुम्हारे हृदय में भी सहानुभूति नहीं।

इसी प्रकार राजा ने भौंरा, हाथी, सबसे उर्वशी का पता पूछा। पर किसी ने भी उसे उर्वशी का पता नहीं बताया। कुछ काल इसी प्रकार उन्मत्त-सा घूमता हुआ वह कदम्ब पेड़ के नीचे पहुँच गया। वहां उसे दो शिलाओं की बीच में चमकती हुई एक मणि दीख पड़ी। उसके विषय में विचार कर ही रहा था कि आकाशवाणी हुई—राजन्, तुम इस मणि को उठा लो, यह संगम मणि तुम्हें उर्वशी से मिला देगी।

राजा ने मणि को उठा लिया। फिर मणि से उर्वशी पाने के लिए प्रार्थना करने लगा। तभी उसका

ध्यान एक लहलहाती लता की ओर गया। उसने प्यार से ज्यूँ ही उस लता का स्पर्श किया, लता उर्वशी के रूप में प्रगट होगई। राजा की प्रसन्नता की सीमा न रही। दोनों कुछ समय वहां रहने के बाद पुनः प्रतिष्ठानपुर लौट आए।

: ५ :

जब से संगममणि ने राजा का उर्वशी से मिलाप कराया था, राजा उसे सदा अपने पास रखते थे। एक दिन महाराज संगम पर बैठे पूजा कर रहे थे कि लाल रेशम में लिपटी उस बहुमूल्य मणि को एक चील उठाकर उड़ गई। चारों ओर शोर मच गया। सैनिक गण चील से मणि छीनने को भेजे गए। पर किसी प्रकार भी मणि का मिलना कठिन प्रतीत होने लगा। कुछ समय इसी भांति बीतने के बाद कञ्चुकी ने एक बाण के साथ वह मणि लाकर दी। मणि को पाकर महाराज अत्यधिक प्रसन्न हो उठे। उन्होंने चील को मारकर मणि प्राप्त करने वाले का नाम पूछा। तब कञ्चुकी ने वह बाण दिखाकर कहा—महाराज ! जिसने चील को मारा है, उसका यह बाण है, इस पर उसी का नाम भी लिखा है।

महाराज ने बाण देखा। बाण पर लिखा था—

यह शत्रुविनाशक बाण उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न, महाराज पुरुरवा के पुत्र, महाधनुर्धारी कुमार आयु का है।

कुमार आयु ! उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न ! पुरुरवा का पुत्र ! यह सब पढ़ते ही महाराज को अतिशय विस्मय हुआ। तो क्या वे पुत्रवान हैं। उर्वशी का कोई पुत्र भी है ? ये प्रश्न महाराज के मस्तिष्क में गूंजने लगे। उसी समय कोई तपस्विनी बाला एक बालक का हाथ पकड़े महाराज के सामने उपस्थित हुई और अभिनन्दन स्वीकार करने के उपरान्त बोली—

महाराज मैं इस बालक को च्यवन ऋषि के आश्रम से लेकर आई हूँ। इस बालक के जन्म के तत्काल बाद उर्वशी ने इसे मुझे सौंप दिया था। आज इस बालक ने एक चील को मारकर आश्रम के नियम का उल्लंघन किया है। अतः च्यवन ऋषि की आज्ञा से मैं इसे उर्वशी को ही सौंपना चाहती हूँ।

इतना सुनते ही माणवक चिल्ला उठा—यह महाराज का ही पुत्र कुमार है। महाराज से इसकी आकृति मिलती है।

कुमार आयु ने पिता के चरण छुए और पिता ने

पुत्र को गले से लगा लिया। महाराज ने उर्वशी को बुला भेजा। पिता पुत्र को एक साथ बैठा देखकर उर्वशी प्रसन्नता से खिल उठी। परन्तु उसी समय इन्द्रदेव का वचन याद आने पर उसे अपार दुःख हुआ। उस दुःख के कारण वह रोने लगी। उर्वशी को इस प्रकार रोते देखकर महाराज पुरुरवा ने कारण पूछा। उर्वशी ने भरतमुनि के शाप और फिर इन्द्रदेव द्वारा दी गई अवधि की सारी कथा कह सुनाई। यह सुनकर राजा को भी दुःख हुआ। उर्वशी को स्वर्ग वापस जाते देखकर उनका हृदय प्रेम से भर आया और उन्होंने भी राजपाट कुमार आयु को सौंप कर स्वयं वन जाने का निश्चय कर लिया।

अचानक बिजली की सी चकाचौंध से सारा राजमहल जगमगा उठा। आँखें मलने के बाद लोगों ने इस महान प्रकाश के बीच में नारद मुनि के दर्शन किए। महाराज पुरुरवा ने कुमार, उर्वशी और मन्त्रियों सहित नारद जी का अभिनन्दन किया। तब नारद जी बोले—

वत्स पुरुरवा ! देवराज इन्द्र का सन्देश है कि तुम राजपाट त्याग कर वन न जाओ। देवासुर-संग्राम छिड़ने वाला है। उसमें आपके सेनापतित्व की बड़ी आवश्यकता है। आप अभी से शस्त्र-त्याग न करें।

देवराज ने साथ ही यह भी शुभ सूचना दी है कि उर्वशी जीवन भर अपनी इच्छा के अनुसार आपके साथ ही रह सकती है। आप दुःखी न हों। पुत्र का तिलक करने के उपरान्त सुख से राज्य सम्हालें, देवताओं की सहायता करें और उर्वशी को इस प्रकार रखें जिससे कि उसे स्वर्ग जाने की कभी इच्छा ही न हो।

देवर्षि नारद ने स्वयं कुमार आयु के मस्तक पर तिलक किया और फिर सबको आशीष देकर वीणा बजाते हुए वहाँ से प्रस्थान किया।



मालविकाग्निमित्र

: १ :

कई सौ साल पहले की बात है। भारतवर्ष में अग्निमित्र नाम का राजा राज्य करता था। विदिशा नाम की उसकी राजधानी थी। अग्निमित्र महा बलशाली था। उन दिनों चारों ओर विदिशा के प्रभुत्व के गीत गाए जाते थे। सब राजा अग्निमित्र की मित्रता के लिए लालायित रहते थे।

अग्निमित्र के पड़ोस में ही कुमार माधवसेन नाम के राजा का राज्य था। उसने भी अग्निमित्र से सन्धि कर ली थी। सन्धि के समय उसने अपनी बहिन मालविका का विवाह राजा अग्निमित्र से करने का प्रस्ताव रखा। राजा अग्निमित्र की दो रानियाँ थीं। परन्तु फिर भी उस समय की प्रथा के अनुसार उसने वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

माधवसेन का एक चचेरा भाई भी था। वह विदर्भ देश का राजा था। उस समय सब उसे विदर्भ-राज कहकर ही पुकारा करते थे। अग्निमित्र से उसका समय-समय पर झगड़ा होता रहता था। राजा अग्नि-

मित्र ने उसके साले को पकड़कर बन्दी बना लिया था। अतः वह भी किसी अवसर की घात में था। जब उसने सुना कि उसकी बहिन का विवाह अग्निमित्र से होने वाला है तो उसने इसका विरोध किया। अन्त में उसने माधवसेन को मार्ग में ही रोक लिया। माधवसेन के साथ उस समय बहिन मालविका के अतिरिक्त मन्त्री, मन्त्री की बहिन कौशिकी और थोड़ी सी सेना भी थी। विदर्भराज की सेना के साथ उसका युद्ध हो गया, थोड़ी सेना के कारण विदर्भराज उसे बन्दी बनाने में सफल होगए। पर कौशिकी, मन्त्री सुमति और मालविका बच निकले। ये तीनों विदिशा की ओर बढ़ चले।

एक दिन तीनों वन में विश्राम कर रहे थे कि उन पर डाकुओं ने आक्रमण कर दिया। दोनों कन्याओं की रक्षा करते-करते मन्त्री मारा गया। मालविका और कौशिकी भी बिछुड़ गईं। मालविका को अग्नि-मित्र का दुर्गरक्षक वीरसेन अपने साथ किले में ले गया। मालविका के गुणों से प्रभावित होकर उसने उसे अपनी बहिन, विदिशा की पटरानी, महारानी धारिणी के पास भेज दिया। मालविका यह भली-भांति जानती थी कि वह अपने होने वाले पति अग्निमित्र

के राज्य में है । पर किसो से परिचित न होने के कारण उसने अपना वास्तविक परिचय नहीं दिया । उसने स्वयं को दासी बना लिया ।

मालविका का सौन्दर्य अनुपम था । उसमें अनेक गुण थे । अतः उसे योग्य समझकर महारानी धारिणी ने आचार्य गुणदास के पास उसकी शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया । वहाँ वह संगीत और अभिनय की शिक्षा लेने लगी । इन्हीं दिनों कौशिकी भी राजमहल में पहुँच गई । वहाँ मालविका को पहले ही उपस्थित देखकर उसने योगिनी का वेश बना लिया । अपने प्रिय व्यवहार के कारण वह भी थोड़े ही दिनों में महारानी और महाराज की प्रियपात्र बन गई ।

एक दिन की बात है महारानी धारिणी चित्रशाला में बैठी चित्रकार द्वारा बनाए अपने नवीन चित्र को देख रही थीं । अचानक उसी समय महाराज भी चित्रशाला में पधारे । चित्र में धारिणी के साथ-साथ मालविका भी बैठी थी । उसकी सुन्दरता से आकर्षित होकर महाराज ने उसका परिचय पाना चाहा । उन्होंने महारानी से उसके विषय में पूछा । पर महाराज के चंचल चित्त से परिचित होने के कारण धारिणी ने मालविका का परिचय नहीं दिया । तभी

महाराज की पुत्री वसुलक्ष्मी बोल उठी––पिता जी ! यह नई दासी बहुत अच्छी है । गुणों की खान है और मुझे भी बहुत प्यार करती है ।

उत्तर सुनकर महाराज चुप हो गए। उन्होंने एक बार ध्यान से चित्रित मालविका को देखा और फिर चित्र धारिणी को पकड़ा दिया ।

: २ :

महाराज अग्निमित्र ने चित्र में मालविका का अनुपम सौन्दर्य देखा था । अपनी पुत्री के मुँह से उन्होंने उसको प्रशंसा भी सुनी थी । उस दिन से रह-रहकर उनका मन मालविका को प्रत्यक्ष रूप से देखने को मचल रहा था । बहुत विचारने के बाद एक दिन उन्होंने अपने मित्र विदूषक गौतम को दिल की बात कह सुनाई । गौतम ने इस विषय पर विचार किया । भली भाँति विचारने के बाद वह महाराज के सामने उपस्थित हुआ । उस समय महाराज के पास उनका मन्त्री वाहतक बैठा था । कुमार माधवसेन के बन्दी होने की और मालविका के बिछुड़ जाने की सूचना महाराज को मिल चुकी थी । महाराज अग्निमित्र ने माधवसेन को छोड़ देने के लिए विदर्भ राज को एक पत्र भी भेजा था । आज वाहतक के हाथ में उसी पत्र

का उत्तर था। विदर्भ राज ने मांग की थी कि यदि अग्निमित्र उसके साले मौर्यवंश को छोड़ दे तो वह भो माधवसेन को छोड़ देगा और मालविका आदि को खोज निकालने का प्रयास करेगा।

विदर्भराज की इस अदला-बदली की नीति से महाराज को क्रोध आया। उन्होंने वीरसेन को विदर्भ-राज पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी। मन्त्री से मालविका और कौशिकी को खोजने को कहा। वाहतक महाराज की आज्ञा को सिर पर रख कर चला गया।

अब महाराज को एकान्त में देखकर गौतम ने नमस्कार किया। गौतम के देखते ही जैसे महाराज को कुछ स्मरण आगया हो, उन्होंने पूछा—मित्र ! कहो कोई युक्ति सूझी ?

गौतम ने महाराज के कानों में कुछ कहा। वह सुनते ही महाराज का मुख प्रसन्नता से खिल उठा। अभी उन्हें बातें करते हुए थोड़ा समय ही बीता था कि किन्हीं दो पुरुषों के झगड़ने का स्वर सुनाई दिया। महाराज ने गौतम से उस शोर का कारण पूछा तो वह मुस्कराकर बोला—देखता हूँ महाराज !

गौतम चला गया और फिर दो पण्डितों को अपने साथ लेकर वहां उपस्थित हुआ। एक पण्डित का नाम

आचार्य गुणदास और दूसरे का नाम था हरिदत्त। दोनों अपने को एक-दूसरे से अधिक योग्य बता रहे थे। उस समय उन्होंने महाराज को ही मध्यस्थ बनाकर अपने झगड़े को निबटाना चाहा। महाराज ने इस कार्य के लिए महारानी धारिणी को उपयुक्त समझा। पर क्योंकि महाराज और महारानी पक्षपात भी कर सकते थे, अतः योगिनी कौशिकी को मध्यस्थ बनाने का प्रस्ताव आया। गौतम ने इसका समर्थन किया। एक-दो बार असमर्थता प्रगट करने के बाद योगिनी ने भी वह बात स्वीकार कर ली। योगिनो बोली—कई तो स्वयं योग्य होते हैं। कई स्वयं अधिक योग्य न होने पर भी दूसरों को शिक्षित करने में कुशल होते हैं। अतः इस विवाद का निर्णय कठिन है। मेरे विचार में योग्य तो ये दोनों हैं। अब जिसमें शिक्षा देने की योग्यता भी हैं, वही योग्य कहलाएगा।

महारानी धारिणी के अतिरिक्त सब ने इसका अनु-मोदन किया। गुणदास ने अपनी नई पर पटु शिष्या माल-विका का अभिनय दिखाने की आज्ञा चाही। जब उसे आज्ञा मिल गई तो वह रंगमंच पर मालविका को लेकर आया। मालविका ने पहले तो महाराज के सामने एक गीत गाया। उसके बाद फिर अभिनय किया।

मालविका के सौन्दर्य से तो महाराज पहले ही उस पर अनुरक्त हो चुके थे। अब जब उन्होंने उसका अभिनय देखा तो मालविका को अपना बनाने की उनकी लालसा और तीव्र हो गई। मालविका के अभिनय और गीत से उन्हें यह भी पता चल गया कि मालविका भी उन्हें प्रेम करती है।

गौतम की इस सूझ पर महाराज अति प्रसन्न हुए। गौतम की युक्ति से ही उन्हें मालविका का साक्षात्कार हुआ था। उन्होंने बार-बार गौतम को छाती से लगाया और धन्यवाद दिया।

: ३ :

प्रमदावन नाम के उद्यान में लगे अशोक वृक्ष की पूजा का दिन आगया था। महारानी स्वयं उसकी पूजा करती थीं। ऐसा करने पर सूखा हुआ वह अशोक वृक्ष भी पाँच दिनों के अन्दर हरा-भरा हो जाता था। परन्तु उस दिन महारानी का पैर झूले से फिसल जाने के कारण पीड़ा कर रहा था। अतः वे अशोक वृक्ष तक जाने में असमर्थ थीं। उन्होंने इस कार्य के लिए मालविका को नियुक्त कर दिया। मालविका की सखी बकुलावलिका भी उसके साथ हो ली। संयोगवश उसी दिन महाराज की छोटी रानी इरावती ने महाराज को

झूला झूलने के लिए प्रमदावन में निमन्त्रित किया था। महाराज अपने मित्र गौतम के साथ उद्यान में पहुँच गए। उन्होंने वहाँ मालविका और बकुलावलिका को भी देखा। बकुलावलिका मालविका के चरणों में लाक्षारस लगा रही थी। साथ ही साथ वह महाराज के कहे अनुसार बातों ही बातों में मालविका के महाराज के प्रति विचार जानती जा रही थी। मालविका के हृदय में महाराज के प्रति स्वाभाविक प्रेम था। उसने बिना किसी बाधा के महाराज के प्रति अपने प्रेम को प्रगट कर दिया। महाराज ने मालविका के मुख से अपने प्रति प्रेम भरे शब्द सुनकर अपने को धन्य समझा।

मालविका और बकुलावलिका अशोक की पूजा करने के उपरान्त लौट रही थीं। गौतम ने उन्हें देख लिया। उसे मजाक सूझा और उसने दोनों को रोक लिया। वह अकड़कर बोला—बकुलावलिके ! तेरा यह दुःसाहस। महारानी जिस अशोक की पूजा करती हैं उसकी पूजा कराने के लिए तू इस मालविका को क्यों ले गई ?

बकुलावलिका बोली—श्रीमान् ! हम दोनों निरपराध हैं। महारानी की आज्ञा से ही यह सब किया

गया है।

इतना कहकर उसने मालविका को संकेत किया और दोनों ने महाराज को प्रणाम किया। अपने चरणों में झुकी हुई मालविका को महाराज ने अपने हाथों से उठाया और फिर बोले—अशोक वृक्ष पर पाद-प्रहार करने से तुम्हारे चरण में चोट तो नहीं लग गई।

मालविका लजा गई। पर उसी समय झाड़ियों के पीछे से प्रगट होकर रानी इरावती ने महाराज को खूब खरी-खोटी सुनाईं। वे दोनों तो वहाँ से चली गईं। पर महाराज के लाख मनाने पर भी इरावती का क्रोध कम न हुआ। वह क्रोध में भरकर चली गई।

: ४ :

महाराज बैठे मालविका के विषय में सोच रहे थे कि गौतम आ पहुँचा। उसने सूचना दी कि इरावती ने बकुलावलिका और मालविका को कारा में बन्दी बना लिया है। साथ ही आदेश दिया है कि जब तक कोई महारानी की नागमुद्रा न दिखाये, उन्हें न छोड़ा जाए। यह सूचना पाते ही महाराज विकल हो गए। अधीर होकर उन्होंने गौतम से मालविका को कारा से मुक्त कराने का उपाय पूछा। कुछ सोचकर गौतम ने महा-राज के कान में कुछ कहा। वह सुनते ही महाराज

प्रसन्न हो गए और महारानी धारिणी के महल की ओर चल दिए। अभी कुछ समय पूर्व महाराज को महारानी के अस्वस्थ होने की सूचना मिली थी।

महाराज अभी रानी से उसके स्वास्थ्य के बारे में पूछ ही रहे थे कि अपने यज्ञोपवीत से पैर का अंगूठा बाँधे गौतम वहाँ आ पहुँचा। वह चिल्ला रहा था—महाराज मुझे बचाएं। सर्प ने मेरे पैर में काट लिया है। महारानी ने पूछा कि सर्प ने कहाँ पर आपको काटा। तो गौतम बोला—महारानी! आपके दर्शनों को आ रहा था। इसलिए में उपवन में फूल लेने गया था। वहीं एक सर्प ने काट खाया।

महारानी को चिन्ता हो गई। उनके ही कारण एक ब्राह्मण को सर्प ने काट खाया था। शीघ्रता करके बोली—महाराज, सेवक के साथ अभी इन्हें राजवैद्य के पास भिजवा दें।

गौतम को गए अभी थोड़ा समय ही बीता था कि सेवक ने आकर महारानी से निवेदन किया—

महारानी जी! निवेदन है कि राजवैद्य जल-कलश में नाग की मूर्ति डालकर उसे पवित्र करना चाहते हैं। अतः उन्होंने प्रार्थना की है कि आप अपनी नाग-मुद्रा देकर ब्राह्मण की रक्षा करें।

महारानी ने उसी समय अपनी अंगूठी उतार कर सेवक को दे दी। उस अंगूठी को पाते ही गौतम तीर की तरह कारागृह की ओर भागा। वहाँ नागमुद्रा दिखाकर उसने मालविका और बकुलावलिका को कारा से छुड़ा लिया। तत्पश्चात् वह उन्हें समुद्रगृह में ले गया। दोनों को समुद्रगृह में छोड़कर वह महाराज से मिलने जा ही रहा था कि स्वयं महाराज उसे मार्ग में मिल गए। गौतम ने उन्हें सारा समाचार कह सुनाया। इस पर महाराज बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने गौतम को गले से लगा लिया। गौतम उन्हें भी मालविका से मिलाने के लिए समुद्रगृह की ओर चल दिया।

बकुलावलिका ने द्वार पर ही महाराज का स्वागत किया। महाराज ने स्वयं आकर मालविका का आतिथ्य स्वीकार किया। बातचीत में दोनों ने अपने-अपने हृदय का प्रेम एक-दूसरे को कह सुनाया। इतने में रानी इरावती ने वहाँ पदार्पण किया। उन्हें असमय में वहाँ आया देखकर सबको आश्चर्य हुआ। वे राजा से बोलीं—

आज आपने कैसे इधर दर्शन दिए। ये दोनों दासियाँ यहाँ कैसे उपस्थित हैं?

राजा बोले—रानी! मैंने प्रसन्न होकर समस्त

कैदियों को जेल से छोड़ दिया है। उसी में ये दोनों भी छूट गई हैं।

पर रानी को इन बातों से सन्तोष न हुआ। तभी किसी व्यक्ति ने महाराज को सूचना दी कि राजकुमारी के खेल में चोट लग गई है और वह उन्हें बार-बार पुकारती है। महाराज उधर ही चले गए और बात बीच में रह गई।

: ५ :

राजा अग्निमित्र और मालविका का प्रेम गुप्त न रह सका। सबको, यहाँ तक कि महारानी धारिणी को इस बात पर पूरा विश्वास हो गया। उन्होंने विचार करने के बाद मालविका का अग्निमित्र से विवाह कर देने का विचार किया। इसलिए उन्होंने महाराज को प्रमदावन नाम के उद्यान में आमन्त्रित किया। समय पर महाराज गौतम के साथ अशोक वृक्ष के पास पहुँचे। वहाँ मालविका और महारानी धारिणी ने उनका स्वागत किया। अभी ये लोग एक-दूसरे की कुशल-क्षेम पूछ रहे थे कि दूत ने आकर निवेदन किया—

महाराज की जय हो। निवेदन है कि अभी-अभी महावीर सेन ने समाचार दिया है कि विदर्भराज

पर आपकी कृपा से विजय पा ली गई है। माधवसेन तथा उनके साथियों को छुड़ा लिया गया है। माधवसेन को अपनी बहिन और मन्त्री की बहिन कौशिकी के कहीं भटक जाने का बड़ा खेद है। वीरसेन ने उन दोनों की खोज प्रारम्भ कर दी है। माधवसेन ने महारानी धारिणी के मनोरंजन के लिए दो दासियाँ भेजी हैं। मैं उन्हें साथ ले आया हूँ। वे दोनों नृत्य और संगीत में अतिचतुर हैं।

भाई वीरसेन की विजय का समाचार सुनकर महारानी धारिणी ने अपने गले का हार उतार कर दूत को दे दिया। फिर उन्होंने दासियों को उपस्थित होने की आज्ञा दी। दोनों दासियाँ वहाँ आ गईं। उनकी ओर देखकर महारानी ने मालविका से कहा—

तुम्हें संगीत का अधिक शौक है। इन दोनों में से तुम किसी एक को चुन लो।

मालविका कुछ बोलती कि इससे पहले ही दोनों दासियाँ, 'राजकुमारी, राजकुमारी, आप यहाँ कहाँ ?' कहकर मालविका से चिपट गईं। मालविका ने दोनों को गले लगा लिया। इस अद्‌भुत घटना को देखकर सब अचम्भित रह गए। तभी कौशिकी वहाँ आगई। उसने स्वयं दोनों दासियों और मालविका से कुशल-क्षेम

पूछी। तब कहीं जाकर उसको तीनों ने पहचाना। कौशिकी-कौशिकी कहकर तीनों ने उसका भी आलिंगन किया। इस दृश्य को देखकर महारानी धारिणी को और उससे भी अधिक महाराज अग्निमित्र को आश्चर्य हुआ। उनके हृदय में प्रश्न उठा—तो क्या उन्होंने दासी से नहीं अपितु राजकुमारी मालविका से, माधवसेन की बहिन और अपनी होने वाली पत्नी से प्रेम किया था ? उन्होंने मालविका की ओर देखा और आनन्दपूर्ण कौतूहल से उनका मुख-कमल खिल उठा।

महारानी ने प्रसन्न होकर महाराज से निवेदन किया कि वे मालविका से विवाह कर लें। पर महाराज ने कुछ भी उत्तर न दिया। वे मौन रहे। इस पर महारानी को क्रोध आने लगा तो विदूषक गौतम बोला—

महारानी जी ! आप व्यर्थ ही मित्र पर क्रोध न करें। ऐसे समय इनका चुप रहना कोई नई बात नहीं, नया वर पहले-पहल तो लजाया ही करता है।

गौतम की इस बात पर स्वयं महाराज को भी हँसी आ गई। अगले दिन माधवसेन आदि बन्धु-बान्धवों के सामने अग्निमित्र और मालविका का विवाह सम्पन्न हो गया।

पूछी । तब कहीं जाकर उसको तीनों ने पहचाना । कौशिकी-कौशिकी कहकर तीनों ने उसका भी आलिंगन किया । इस दृश्य को देखकर महारानी धारिणी को और उससे भी अधिक महाराज अग्निमित्र को आश्चर्य हुआ । उनके हृदय में प्रश्न उठा––तो क्या उन्होंने दासी से नहीं अपितु राजकुमारी मालविका से, माधवसेन की बहिन और अपनी होने वाली पत्नी से प्रेम किया था ? उन्होंने मालविका की ओर देखा और आनन्दपूर्ण कौतूहल से उनका मुख-कमल खिल उठा।

महारानी ने प्रसन्न होकर महाराज से निवेदन किया कि वे मालविका से विवाह कर लें । पर महाराज ने कुछ भी उत्तर न दिया । वे मौन रहे । इस पर महारानी को क्रोध आने लगा तो विदूषक गौतम बोला––

महारानी जी ! आप व्यर्थ ही मित्र पर क्रोध न करें । ऐसे समय इनका चुप रहना कोई नई बात नहीं, नया वर पहले-पहल तो लजाया ही करता है ।

गौतम की इस बात पर स्वयं महाराज को भी हँसी आ गई । अगले दिन माधवसेन आदि बन्धु-बान्धवों के सामने अग्निमित्र और मालविका का विवाह सम्पन्न हो गया ।